ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

नवम्बर २०१५ Date of Printing = 05-11-15
प्रकाशन दिनांक= 05-11-15

वर्ष ४५ : अङ्क १
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : कार्तिक-मार्गशीर्ष २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९९५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- वीरो! अपना देश बचाओ २
- वेदोपदेश ३
- राजनीति का गिरता स्तर ४
- राधा कृष्ण कहें.... ६
- वैदिक मन्त्रों के..... ११
- विजयादशमी पर्व..... १५
- प्यारा आर्यसमाज १६
- बौद्धों के... १७
- शास्त्रानुसार स्वर्ग १९
- वैदिक देवताओं.... २२
- भारतीय इतिहास...... २५

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

वीरो! अपना देश बचाओ

(पं० नन्दलाल निर्भय, भजनोपदेशक, आर्य सदन बहीन जनपद पलवल, हरियाणा)

आर्यावर्त्त के वीर सपूतो! मिलजुल करके कदम बढ़ाओ।
महानाश की ज्वालाओं से, अपना प्यारा देश बचाओ।।

ऋषियों-मुनियों के भारत में, पापाचार गया बढ़ भारी।
डाकू गुण्डे, चोर सुखी हैं, मस्ती में हैं मांसाहारी।।
शासक दल बन गया शराबी, आज दुखी हैं वेदाचारी।
रक्षक हैं, भारत में भक्षक, जागो! भारत के बलधारी।।

मानवता का पाठ पढ़ाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।
महानाश की ज्वालाओं से, अपना प्यारा देश बचाओ।।

काट-काट बिरवे गुलाब को, यहाँ नागफल सींचा जाता।
डाल-डाल पर बैठे उल्लू, देख-देख माली हर्षाता।।
खाओ-पीओ-मौज उड़ाओ, युवा वर्ग है निशदिन गाता।
अपमानित हैं यहाँ देवियाँ, सिसक रही है भारत माता।।

राम-भरत के वीर सपूतो! दुखी जनों के कष्ट मिटाओ।
महानाश की ज्वालाओं से, अपना प्यारा देश बचाओ।।

उग्रवाद, आतंकवाद ने, देश हमारा घेर लिया है।
नेता हैं कुर्सी के भूखे, पाप जिन्होंने बढ़ा दिया है।।
देश-धर्म का ध्यान नहीं है, जिनका पत्थर बना हिया है।
वैदिक पथ तज दिया खलों ने, भारत को बर्बाद किया है।।

स्वामी दयानन्द बन जाओ, जग में नाम अमर कर जाओ।
महानाश की ज्वालाओं से, अपना प्यारा देश बचाओ।।

गो ब्राह्मण की सेवा करना, ऋषियों ने धर्म बताया।
गौमाता है खान गुणों की, वेद-शास्त्रों में दर्शाया।।
विद्वानों की शिक्षाओं को, दम्भी लोगों ने बिसराया।
नक्ल विदेशों की कर-कर के, अपना जीवन नर्क बनाया।।

गोहत्या को बन्द कराओ, वीरो! श्री कृष्ण बन जाओ।
महानाश की ज्वालाओं से, अपना प्यारा देश बचाओ।।

याद रखो! जो देश-धर्म की, श्रद्धा से करते हैं सेवा।
वही भाग्यशाली पाते हैं सुनो! सुयश की पावन मेवा।।
डूब रही है नाव धर्म की, पार लगाओ बनकर खेवा।
अगर न जागे नहीं मिलेगा, नाम तुम्हारा जग में लेवा।।

"नन्दलाल" है भला इसी में, जितना हो शुभ कर्म कमाओ।
महानाश की ज्वालाओं से, अपना प्यारा देश बचाओ।।

राजनीति का गिरता स्तर

(धर्मपाल आर्य)

राजनीति मेरा कभी विषय नहीं रहा परन्तु इसमें जब अप्रत्याशित मोड़ आते हैं और राजनेताओं के तुच्छ राजनीतिक स्वार्थों के कारण उनके बोल जब निम्न स्तर पर आ जाते हैं तथा राजनीति के साथ-साथ जब नेता हमारी आध्यात्मिक विरासत के ठेकेदार बनकर कुछ का कुछ अनाप शनाप बोलने लगते हैं, तो उनका विरोध करना आवश्यक हो जाता है, अन्यथा उन (नेताओं) के द्वारा वैदिक व आध्यात्मिक विरासत पर की गयी अनाप-शनाप टिप्पणियाँ तथा निम्नस्तर के उनके बोल समाज को अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं। मैंने अब तक अपने जीवन में राजनेताओं के राजनीतिक जीवन को इतना गिरते हुए कभी नहीं देखा, जितना कि इस बार बिहार के विधान सभा चुनावों में गिरते देखा। राजनेताओं की राजनेताओं के प्रति प्रयोग की जाने वाली शब्दावली को सुनकर ऐसा लगता है कि मानो भारतीय राजनीति एक नये प्रयोग के दौर से गुजर रही है। कई बार तो ऐसा लगा कि हमारे नेतागण राजनीति के तहत नहीं अपितु एक रणनीति के तहत इतनी असंगत अशिष्ट शब्दावली का प्रयोग कर रहे हैं। शैतान, नरभक्षी, पिशाच और ब्रह्मपिशाच आदि ऐसे शब्द हैं, जिनका प्रयोग करके हमारे राजनेता अपना राजनैतिक सफर तय कर रहे हैं। राष्ट्रीय जनता दल के नेता रघुवंश प्रसाद ने तो सारी सीमाएं तोड़ दीं। इन महोदय ने कहा- "सब जानते हैं कि प्राचीन काल में सब ऋषि भी माँस खाते थे और ये सब वेदों और पुराणों में लिखा है।" इन महाशय को यहीं सन्तोष नहीं हुआ अपने कथन को पुष्ट करते हुए कहा- "लोग पढ़ते तो हैं नहीं कई ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते हैं।" उपरोक्त कथन से एक बात तो स्पष्ट है कि रघुवंश प्रसाद का बयान अज्ञानतावश दिया गया बयान तो बिल्कुल नहीं कहा जा सकता क्योंकि अज्ञानतावश दिया गया बयान होता तो जैसा कि यहाँ के नेताओं की आदत है; उनके किसी कथन का यदि विरोध होता है तो ये तुरन्त पैंतरा बदलते हुए कह देते हैं कि उनके वक्तव्य का ये मतलब नहीं था, वो मतलब नहीं था मेरे वक्तव्य का गलत अर्थ निकाला गया है और मीडिया ने मेरे बयान को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया है लेकिन रघुवंश प्रसाद को मैं इस प्रक्रिया का अपवाद कह सकता हूँ क्योंकि उन्होंने उपरोक्त घिसे-पिटे तर्क को अपने बचाव में ढाल नहीं बनाया अपितु लोगों के पढ़ने पर ही प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया तथा बलपूर्वक कहा कि कई ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्राचीन ऋषि-मुनि माँस खाते थे। मुझे उपरोक्त नेता की सोच और समझ पर तरस आता है, बिहार विधानसभा के चुनाव प्रचार में इस बार कुछ राजनेताओं और कुछ राजनीतिक दलों में मुस्लिम वोट हासिल करने की अजीब सी प्रतिस्पर्धा नजर आ रही है तथाकथित धर्मनिरपेक्षता का नकाब ओढ़कर भारतीय परम्पराओं और नैतिक मूल्यों को नीचा दिखाने का प्रयास किया जा रहा है। जिन ऋषियों, मुनियों और योगियों ने अपना जीवन ईश्वर की साधना में और आत्म साक्षात्कार में लगा दिया, जिन ऋषियों, मुनियों और योगियों ने अपने अमूल्य जीवन की अमूल्य घड़ियाँ जीवन और जगत के रहस्यों को सुलझाने में लगा दीं, जिन ऋषियों, मुनियों और योगियों ने प्राणिमात्र को मानवता का, आध्यात्मिकता का और एकता का पाठ पढ़ाया और जिन ऋषियों, मुनियों और योगियों ने प्राणिमात्र को सत्यता का, भक्ति का, उदारता का, त्याग का, सहयोग का, बन्धुत्व का और अहिंसा का पाठ पढ़ाया, ऐसे ऋषियों, मुनियों और योगियों को मांसाहारी कहना निर्लज्जता और कृतघ्नता की पराकाष्ठा है। उपरोक्त नेता ने इस प्रकार की टिप्पणी यदि पैगम्बर मुहम्मद पर अथवा ईसामसीह पर की होती तो उन्हें पता चलता कि महापुरुषों पर अनर्गल और ओछी टिप्पणी करने का क्या परिणाम होता है?

गुरुग्रन्थ साहब की बेअदबी का सिख समुदाय जिस मुखरता के साथ विरोध कर रहा है; पता नहीं उसकी गूंज रघुवंश प्रसाद के कानों तक पहुँची है या नहीं लेकिन गुरुग्रन्थ साहब की बेअदबी के विरोध की गूँज पूरे देश में सुनायी दे रही है। सिरसा के तथाकथित सन्त ने जब गुरु गोबिन्द की पोशाक में भक्तों को उपदेश दिया, तब भी सिख-समुदाय ने उस तथाकथित सन्त के पहनावे को गुरु का अपमान मान कर उसके विरुद्ध पन्थ के अनुसार फरमान कर दिया था। फिर उसे माफी दिये जाने का समाचार आया। क्षमा दिये जाने को कुछ ही समय बीता था कि माफी दिये जाने का निर्णय न केवल वापस लिया गया, अपितु क्षमा देने वाले पञ्चों समेत कई सदस्यों को निलम्बित कर दिया। अपने पैगम्बर का, अपने ईशु का और अपने गुरु का अपमान जिनके लिए असहनीय होता है, उन पर आपत्तिजनक टिप्पणी करने का किसी में साहस नहीं है। ऋषियों मुनियों द्वारा मांस खाये जाने की बात कहकर नेताजी ने न केवल ऋषियों, मुनियों और योगियों की मानसिक, आत्मिक और आध्यात्मिक पवित्रता पर प्रश्न खड़ा किया है, अपितु वैदिक संस्कृति पर, वैदिक परम्पराओं और मान्यताओं पर, प्राचीन पावन दार्शनिक चिन्तन पर, हमारी सनातन, पुरातन आस्तिकता पर तथा हमारी संवेदनशीलता पर प्रश्न चिह्न लगाने की अनाधिकार चेष्टा की है। वेदों में अनेक स्थलों में पशु हिंसा का विरोध और निषेध किया गया है, यथा- "यजमानस्य पशून् पाहि", अर्थात् यजमान के पशुओं की रक्षा करो। इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।" अर्थात्- हे इन्द्र! आप हमारे लिए दोपायों के लिए तथा चौपायों के लिए कल्याणकारी सिद्ध हों। एक बार पादरी डॉक्टर होपर साहब ने स्वामी दयानन्द जी से पूछा- "वेदों में अश्वमेध और गोमेधादि का वर्णन है और उस समय में लोग घोड़े और गाय आदि की बलि दिया करते थे। आप इसके विषय में क्या कहते हैं?" स्वामी जी ने पादरी महोदय के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि वेदों में अश्वमेध और गोमेध से घोड़े और गाय की बलि देना अभिप्रेत नहीं है, प्रत्युत उनके अर्थ ये हैं- "राष्ट्रं वै अश्वमेधः" तथा अन्नं हि गौः" अर्थात् घोड़े, गाय, मनुष्य और पशु मारकर होम करना कहीं नहीं लिखा, केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा लिखा है। जहाँ-जहाँ ऐसा लिखा है, वहाँ-वहाँ उन्हीं वाम-मार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो! राजा न्याय से प्रजा का पालन करे, यह अश्वमेध है तथा अन्न, इन्द्रिय, अन्तःकरण और पृथिवी आदि को पवित्र करने का नाम नरमेध है। "द्विपाद्व चतुष्पात् पाहि।" अर्थात् दोपाये मनुष्य और चौपाये पशु सबकी रक्षा करो। वेदों में पशु हिंसा (माँसभक्षण) का निषेध, शतपथ ब्राह्मणादि ब्राह्मण ग्रन्थों में पशु हिंसा (माँसभक्षण) का निषेध, गीता में, रामायण में, महाभारत समेत अन्य वैदिक ग्रन्थों में पशु हिंसा (माँसभक्षण) का निषेध है, फिर भी रघुवंश प्रसाद महाशय हठात् अपनी बेतुकी बात को सिद्ध करने पर तुले हुए हैं, इससे बड़ा दुर्भाग्य इस देश की राजनीति का और हो ही नहीं सकता है। पाठक विचार करें कि किसके पढ़ने पर या ना पढ़ने पर शक उत्पन्न होता है, रघुवंश प्रसाद के पढ़ने पर अथवा रघुवंश प्रसाद के अनुसार लोगों के पढ़ने पर? ऋषियों, मुनियों तथा योगियों की साधना को, तपस्या को, संयम को, आध्यात्मिकता को, आत्मचिन्तन को और योगमय जीवन को राजद के नेता ने अपमानित करने का घृणित कार्य किया है। अपने तुच्छ राजनीतिक स्वार्थों के लिए ऋषियों, मुनियों और योगियों को गन्दी राजनीति की दलदल में घसीटना गन्दी और ओछी मानसिकता का प्रतीक है। यदि मेरा अनुमान सही है कि बिहार विधान सभा के चुनावों से पूर्व हुए अब तक के विधान सभा चुनावों में महापुरुषों, ऋषियों, मुनियों और योगियों पर इतनी घटिया टिप्पणी कभी नहीं की गयी तो फिर इस बार के बिहार विधान-सभा चुनावों ने आने वाली पीढ़ी के लिए बड़ी दुःखद और दुर्भाग्यपूर्ण कटु यादें छोड़ी हैं। अन्त में मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे राजनीति और राष्ट्र के इस प्रकार के कर्णधारों को सद्बुद्धि प्रदान करें, ताकि ये देश को सही नेतृत्व दे सकें।

❑❑

राधाकृष्ण कहें या आधाकृष्ण?

(राजेशार्य आट्टा साढ़ौरा, यमुनानगर, मो.-09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! किसी विचारक ने कहा है कि लोहा अपने ही अंश (जंग) के द्वारा नष्ट होता है। यह बात हिन्दू समाज के विषय में भी सत्य है। इतिहास का अध्ययन यह सिद्ध करता है कि वैदिक (हिन्दू) धर्म को विदेशी आक्रमणों ने जितना नष्ट किया, उससे अधिक इसके पुरोहितों ने अपने स्वार्थवश अनर्थकारी परम्पराएँ चलाकर नष्ट किया है। 1857 जैसी एक-आध घटनाओं को छोड़कर देश की जनता का मुफ्त माल उड़ाने वाले अधिकतर बाबाओं ने देश व धर्म की रक्षा के प्रति उदासीनता ही दिखाई है। शंकराचार्य अपने लिये सोने-चाँदी के सिंहासन घड़वाते रहे और दूसरी तरफ चमत्कार व अवतारवाद की आड़ में हिन्दू समाज नये-नये गुरुओं व अवतारों की टोलियों में बँटता चला गया। हिन्दुओं के महामण्डलेश्वर कुम्भ में शाही स्नान के लिए झगड़ते रहे, जबकि साईं जैसा साधारण मनुष्य भी अवतार बनकर राम-कृष्ण जैसे महापुरुषों के साथ पुज गया। मुम्बई वाले फिल्म कलाकारों के चमत्कार ने सन्तोषी माता को सारे देश में पुजवा दिया, जिसका किसी पुराण में कोई वर्णन नहीं है। अब उन्हीं की मेहरवानी से देश में राधे-राधे गूँजने लगा है। ऐसे में यदि कोई साधारण स्त्री 'राधे माँ' बनकर हिन्दू समाज में पुज जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अन्य कई गुरुओं की तरह अलौकिक शक्ति से प्रेम करने का नाटक करने वाली राधे माँ भी स्वयं प्रकृति के मनमोहक स्वरूप (विषय-भोग) के आकर्षण में पड़कर अब न्यायालय के चक्कर काट रही है, पर भोले भक्त कोई तर्क स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं।

सम्भवतः इसके मूल में हिन्दू मत के अन्तर्राष्ट्रीय प्रचारक स्वामी विवेकानन्द के विचार रहे हों— ''जितने ही प्रकार के धर्म हों, उतना ही संसार के लिए बेहतर है व वाद विवाद, मूल वाक्य, शास्त्र, धार्मिक मत और सिद्धान्त इनसे मैं विष की तरह द्वेष करता हूँ।"

स्वामी विवेकानन्द के समर्थन में ही महाकवि रामधारी सिंह दिनकर ने भी लिखा है- ''भारतीय धर्म की रचना पण्डितों, मीमांसकों और तार्किकों ने नहीं, बल्कि संतो, महात्माओं और द्रष्टाओं ने की है।'' (डॉ० भवानीलाल भारतीय, दयानन्द और विवेकानन्द)

ऐसे ही विचार गीताप्रेस गोरखपुर से 'प्रकाशित' थानेदारी से इस्तीफा' पुस्तक में भगत धन्ना जाट के प्रसंग में लिखे हैं-

"भगवान का स्वभाव है कि वे मूर्ख पर प्रसन्न रहते हैं और पढ़े-लिखे से साढ़े तीन कोस दूर। इसका कारण यह नहीं कि भगवान भी मूर्ख हैं। बात यह है कि शिक्षित लोगों के सिर पर तीन भूत सवार हो जाते हैं- 1. शंका, 2. तर्क और 3. आलोचना। वे तीनों भूत भक्ति, ज्ञान और निश्चय को समीप नहीं आने देते। उधर भगवान रहते हैं- 'दृढ़ विश्वास' के मन्दिर में। तर्क और विश्वास में वही सम्बन्ध है, जो केले के वृक्ष में और बबूल (कीकर) के पेड़ में। यानी- वे रस डोलें आपने- उनके फाटत अंग।''

सोचिये, गीताप्रेस ने आज तक जो लाखों-करोड़ों पुस्तकें छपवाई हैं, क्या वे अनपढ़ों के लिए हैं और क्या उनके लेखक अनपढ़ थे? यदि पढ़ाई-लिखाई ईश्वर-भक्ति में बाधक है, तो सनातन (हिन्दू) धर्म के नाम से सारे देश में गुरुकुल, विद्यालय व महाविद्यालय क्यों चल रहे हैं?

अब हम बात करते हैं राधा की, जिसके साथ अपने समय के सर्वश्रेष्ठ योद्धा, नीतिमान, धर्मरक्षक व

योगीराज श्री कृष्ण के गलत सम्बन्ध जोड़कर उसके वंशज व भक्त कहलाने वाले लोग भक्ति की आड़ में दण्डनीय अपराध कर रहे हैं। यदि राधा श्रीकृष्ण की पत्नी होती, तो उनके समकालीन इतिहास 'महाभारत' में उसका वर्णन अवश्य होता। सप्ताह भर भागवत्-कथा के नाम पर भक्तों को लूटने और राधे-राधे की धुन पर नचाने वाले इन कथावाचकों, धर्माचार्यों से पूछो तो कि भागवत् पुराण में कहाँ लिखा है कि राधा श्री कृष्ण की रानी (पत्नी) थी। चलो, रानी छोड़ो, यही दिखा दो कि राधा नाम की किसी बदचलन गैर औरत से श्रीकृष्ण का अवैध सम्बन्ध था। फिर भागवत् पुराण कथा में राधे-राधे क्यों चिल्लाते हो?

स्मरण रहे, यदि श्रीकृष्ण का राधा या भागवत् आदि पुराणों में वर्णित अन्य गोपियों के साथ किसी प्रकार का अवैध सम्बन्ध होता, तो उन्हें राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा का सम्मान न मिलता और शिशुपाल जैसा छिद्रान्वेषी व मिथ्या दोषारोपण करने वाला धूर्त उसे कहने से न चूकता। पराई स्त्री से अवैध सम्बन्ध रखना उस समय भी दुराचार कहलाता था और दुराचारी को वही सजा मिलती थी, जो कीचक को मिली।

भागवत् पुराण का लेखक (वेद व्यास नहीं- कोई धूर्त पण्डित) भी मानता है कि श्रीकृष्ण सदाचार और संयमी पुरुष थे। पराई स्त्रियों के साथ रासलीला (काम क्रीड़ा) खुला व्याभिचार है और यह दुराचार पाप है, ऐसा भागवत् के लेखक ने गोपियों को रासलीला से मना करते हुए स्वयं श्रीकृष्ण के मुख से कहलवाया है। देखिये-

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः।।
'(भा०पु०, स्क० 10, अ० 29, श्लोक 26)

"कुलीन स्त्रियों के लिए जार पुरुष की सेवा सब तरह से निन्दनीय ही है। इससे उनका परलोक बिगड़ता है, स्वर्ग नहीं मिलता, इस लोक में अपयश होता है। यह कुकर्म स्वयं तो अत्यन्त तुच्छ, क्षणिक है ही, इसमें प्रत्यक्ष-वर्तमान में भी कष्ट ही कष्ट है। मोक्ष आदि की बात ही कौन करे, यह साक्षात् परम भय नरक आदि का हेतु है।"

फिर भी अपनी कामुक बुद्धि से भागवत् का धूर्त लेखक श्रीकृष्ण से गोपियों का परलोक बिगड़वाता है, उनसे यह निन्दनीय कुकर्म करवाता है और अन्धे भक्त समाज में दुराचार फैलाने वाले ऐसे ग्रन्थ व उसके कथावाचक की पूजा करते हैं। यही है हिन्दू समाज की भक्ति! यहाँ ऐसे कलाकार पण्डित बैठे हैं, जिन्हें भागवत् या महाभारत में तो राधा मिली नहीं, पर वेद में ढूँढ निकाली। अब कोई इनसे पूछे कि जब वेद सृष्टि के आरम्भ में प्रकट हुए थे, तो पाँच हजार वर्ष पूर्व हुए श्रीकृष्ण का और उनकी काल्पनिक प्रेमिका का वर्णन वेद में कैसे मिल सकता है? पर श्री गोविन्दप्रसाद जी चतुर्वेदी धर्माधिकारी ने रामायण के इतिहास को भी वेद में ढूँढ लिया और राधा कृष्ण को भी। वे लिखते हैं (कल्याण, अवतार कथाङ्क, पृ० 401 में)- श्रीराधा-कृष्ण के अवतार की कथा का भी मूल निम्नलिखित मन्त्र में प्राप्त होता है-

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सुनृता।। (ऋक् 1/30/5)

"अर्थात् हे राधापते (परमेश्वर-घनश्याम)! जिसके मुख में आपकी स्तुतिमयी वाणी है, उसकी स्तुतियों से प्राप्त होने वाले तुम उसके घर में ऐश्वर्य भर दो; उसकी वाणी मधुर और सत्य हो।"

चतुर्वेदी जी इस मंत्र में 'राधानां पते' शब्द को देखकर राधा-कृष्ण अवतार की कल्पना कर रहे हैं। जबकि अवतार का उद्देश्य तो पापियों का नाश, सज्जनों की रक्षा और धर्म की स्थापना करना बताया जाता है। फिर राधा ने इनमें से कौन सा काम किया, जिससे उसे अवतार माना जाये? क्या पत्नी की उपेक्षा कर प्रेमिका को प्राथमिकता देना (दुराचार फैलाना) सिखाना ही

कृष्ण-राधा अवतार का उद्देश्य था? फिर पुराणों में वर्णित (24 या 22) अवतारों में राधा की गिनती क्यों नहीं है? यदि यहाँ 'राधानां (बहुवचन है) पते' का अर्थ 'राधा (राधाओं) का पति' (कृष्ण) करें, तो राधाएँ बहुत सारी होंगी। फिर राधा या राधाओं के साथ विवाह करने का वर्णन महाभारत व भागवत् पुराण में क्यों नहीं हुआ? यदि ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड अध्याय 48 (जहाँ ब्रह्मा उनका विवाह करवाना लिखा है) को प्रमाण माना जाए, तो इसी के ब्रह्मखंड के पाँचवें अध्याय (जहाँ राधा को कृष्ण के वाम पार्श्व से उत्पन्न हुई-पुत्री लिखा है) व प्रकृति खण्ड, अध्याय 49 के 35-47 श्लोक (जहाँ राधा को कृष्ण की माता यशोदा के भाई रायण की पत्नी लिखा है) को प्रमाण क्यों न माना जाए?

लौकिक संस्कृत के शब्द वैदिक संस्कृत में उसी अर्थ को दें, यह आवश्यक नहीं है। फिर भी लौकिक में राधा का प्रसिद्ध अर्थ सफलता होता है और पं० हरिशरण विद्यालंकार जी ने उपर्युक्त मंत्र में यही अर्थ स्वीकार किया है, जो उचित भी है। 'राधानां पते' का अर्थ है- 'हे सफलताओं के स्वामिन्!' चतुर्वेदी जी के अनुसार अर्थ बनना चाहिए- 'हे राधाओं के पति!' यह अर्थ असम्भव है। ऐसी ही खींचतान 'वेद प्रदीप' दिसम्बर 1987 के अंक में स्वामी गंगेश्वरानन्द जी ने की थी। उन्होंने तो श्री और राधस् (राधः) शब्दों के भी राधा अर्थ निकाले थे। जबकि राधस् धनवाची नपुंसकलिंग शब्द है, स्त्रीलिंग राधा नहीं। आचार्य श्री वीरेन्द्र मुनि शास्त्री काव्यतीर्थ ने 'वेदोद्धारिणी' अप्रैल-जून 1989 में इस भ्रम का निवारण किया था।

महाभारत में गोपी-प्रेम की गन्ध भी नहीं है; भागवत् पुराण में रासलीला, चीर-हरण, कुब्जा समागम आदि का नग्न चित्र है, पर वहाँ राधा का नाम भी नहीं है और ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का विशेष व कामुक वर्णन है, तो इससे सिद्ध होता है कि महाभारत, भागवत् व ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों के लेखक अलग-अलग रहे हैं और अलग-अलग काल में रहे हैं। वेदव्यास जैसा उच्च अवस्था का योगी महर्षि किसी भी काल्पनिक प्रेम-कथा या घर-गृहस्थी की बातें लिखने में अपना जीवन क्यों बर्बाद करेगा। ऐसी कथाएँ सुनकर समाज का पतन ही तो होगा। इसे बाल-लीला बताने से दुराचार सदाचार नहीं बन सकता।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि कृष्ण-भक्ति की चादर ओढ़कर श्रीकृष्ण जैसे सर्वगुण सम्पन्न महापुरुष को कलंकित करने की बदमाशी कब और किसने की, जिसके दुष्प्रचार से समस्त भारत के धार्मिक साहित्य में राधा का ऐसा प्रचार हुआ कि मानो श्रीकृष्ण का जन्म (या अवतार) परस्त्रियों से रंग-रलियाँ मनाने के लिए ही हुआ हो और लोग महाभारत में वर्णित अन्याय व अत्याचार मिटाकर धर्म स्थापना करने वाले चक्रधर श्रीकृष्ण को भूल गये, जिसकी रानी रुक्मिणी थी।

वेदोद्धारिणी के जुलाई-सितम्बर 1986 के अंक में डॉ० जगदीश प्रसाद जी (मेरठ कॉलेज) ने 'कौन कहता है- राधा थी' शीर्षक से विस्तृत लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने अमर स्वामी शास्त्रार्थ महारथी व ब्रज साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों (प्रभु दयाल मीतल, डॉ० उषा पुरी, पं० बलदेव उपाध्याय, शशि भूषण दासगुप्त आदि) के प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि चाहे राधा का वर्णन भारत की विभिन्न भाषाओं और क्षेत्रों के साहित्य में मिलता है और चाहे वह दो हजार वर्ष पुराना है, फिर भी राधा का श्रीकृष्ण के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था। श्रीकृष्ण से सम्बन्धित मुख्य पुराणों भागवत्, विष्णु और हरिवंश आदि में राधा की अनुपस्थिति और ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण के साथ वर्णित उसके विभिन्न सम्बन्ध (पुत्री, पुत्रवधु, बहन, मामी, प्रेमिका आदि) उसे काल्पनिक सिद्ध करते हैं।

उपरोक्त लेख में प्रभु दयाल मीतल के उद्धरण में

लिखा है– "अब तक अनुसंधान से ज्ञात होता है कि राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का सर्वप्रथम उल्लेख लोक-साहित्य में हुआ था। इसके प्रमाण के लिए प्राकृत-भाषा की 'गाहसत्तसई' का नाम लिया जाता है। प्रतिष्ठानपुर के राजा हाल सातवाहन ने अपने समय (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी) की श्रृंगार-रसपूर्ण प्राकृत गाथाओं का संकलन इस नाम से करवाया था। उनमें एक कथा में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का कथन है।" धीरे-धीरे राधा का स्वरूप बढ़ता व बदलता चला गया। सम्भवतः यह वही काल था, जब संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश आदि के कवियों की रचनाओं व पुराणों में वर्णित नग्नता मन्दिरों के बाहर-भीतर दिखाई देने लगी थी। उस काल की शैली के कामुक चित्र प्राचीन मन्दिरों व भवनों में अभी भी देखे जा सकते हैं। 'बाबरनामा' में उरवा की चट्टानों पर बनी मूर्तियों के विषय में लिखा है- "ये मूर्तियाँ नंगी हैं और उनके गुप्त अंगों को भी ढँकना मुनासिब नहीं समझा गया।... मैंने इन मूर्तियों के तोड़े जाने का आदेश दिया।" (पृ. 591, के०कु०ठाकुर)

जयदेव (बारहवीं शताब्दी) ने 'गीतगोविन्द' में राधा कृष्ण की प्रेम लीला को भक्ति (हरिस्मरण) के साथ जोड़ा, तो विद्यापति (मैथिल कोकिल) ने राधा-कृष्ण के वर्णन को 'नायक-नायिका' भेद जैसा रूप प्रदान किया। उसके साहित्य में आराध्य के वांछनीय पूज्य भाव का अभाव है। यौवन मद और प्रेम की अतिशयता के वर्णन में विद्यापति ने मर्यादा एवं शील की सीमाएँ तोड़ दीं और राधा-कृष्ण को नायक नायिका भेद तक ही सीमित कर दिया।

रीति काल के हिन्दी कवियों ने अश्लील से अश्लील वर्णनों का आलम्बन भी राधा-कृष्ण को इसीलिए बनाया कि उनके काव्य का तिरस्कार न हो। सूरदास भले ही भक्त कवि के रूप में प्रसिद्ध है पर वास्तविकता यही है कि भक्ति की आड़ में उसके कामुक वर्णन ने श्रीकृष्ण के चरित्र को निम्न स्तर पर लाकर छोड़ा है। आश्चर्य की बात है कि देश में इन कवियों का विरोध न किसी शंकराचार्य ने किया और न किसी धर्माचार्य ने। इसके विपरीत इन्हें श्रेष्ठ उपाधियों से लादते चले गये क्योंकि सभी उसी रंग में रंगे हुए थे। ऐसे ही कवियों ने 16वीं या 17वीं शताब्दी में अपनी वासनामयी बुद्धि से विद्या का दुरुपयोग करते हुए राधा से सम्बन्धित उपनिषद् तक लिख डाले।

पं० बलदेव उपाध्याय ने 'भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा' में लिखा है- "17वीं तथा 18वीं शती में सुदूर दक्षिण के तंजावूर (तंजोर) तथा मधुरा (मदुरा) के छोटे-छोटे शासक क्षुद्र श्रृंगार भावना के कारण इस मधुर भक्ति को अपनाने लगे थे। उनका आदर्श श्रीकृष्ण का पवित्र निष्कलंक प्रेम न था और न उनकी श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति थी। वे अपने आश्रित कवियों तथा वेश्याओं से अपने लिए कृष्ण जैसा आदर-सत्कार तथा प्रेम पाने के लिए आग्रह करते थे। वे इस प्रकार अपनी श्रृंगारी भावना की पूर्ति के लिए साहित्यिक आयोजन करते थे। इस युग की एक विख्यात रचना है 'राधिका सान्त्वनमु' जिसका प्रणयन "मृद्दुपडनि' नामक वेश्या ने किया था। इसमें श्रृंगार रस अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर गया है।"

वास्तविकता तो यही है कि रसिक कवियों ने राधा-कृष्ण प्रेम वर्णन के बहाने से अपनी कामुकता प्रकट की है, जिसे वे केवल कृष्ण के प्रति भक्ति से प्रकट नहीं कर सकते थे। अतः उनकी प्रेमिका के रूप में राधा की कल्पना कर श्रृंगारिक (कामोद्दीपक) रचनाएँ भी कीं और जनता की नजरों में आदरणीय भक्त कवि भी बने रहे। ब्रज साहित्य की तो 75% रचनाएँ कृष्ण के प्रेम में विभोर राधा का वर्णन मात्र है। सम्भवतः राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ ऐसे ही कवियों के लिए हैं-

उद्देश्य कविता का प्रमुख श्रृंगार रस ही हो गया,
उन्मत्त होकर मन हमारा अब उसी में खो गया।

कवि-कर्म कामुकता बढ़ाना रह गया देखो जहाँ,
वह वीर रस भी स्मर-समर में हो गया परिणत यहाँ!
सोचो, हमारे अर्थ है यह बात कैसे शोक की-
श्रीकृष्ण की हम आड़ लेकर हानि करते लोक की!
भगवान को साक्षी बनाकर यह अनंगोपासना,
है धन्य ऐसे कविवरों को, धन्य उनकी वासना!!

उन्नीसवीं शदी के उत्तरार्ध में पहली बार किसी संन्यासी ने पुराणों को कपोल-कल्पित बताकर धूर्त कवियों की मनमानी की पोल खोली और उनके शिष्यों ने शास्त्रार्थ का ऐसा दौर चलाया कि हिन्दू धर्म को वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि से हटाकर केवल (महापुरुषों व महर्षियों को व्यभिचारी बताने वाले) पुराणों तक ही सीमित रखने वालों की नींद उड़ गई। अपनी दुकान उजड़ती देख उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि राधा श्रीकृष्ण की पत्नी तो नहीं, पर भक्तिनी थी।

यदि राधा कृष्ण की वैसी ही भक्तिनी थी, जैसी शबरी राम की, तो उसका महाभारत में वर्णन होना चाहिए था, जैसा रामायण में शबरी का है। यदि वह मीराबाई की तरह बाद में हुई थी, तो राधेश्याम की तरह मीराश्याम क्यों नहीं बोला जाता? यदि वह बाद में हुई थी, तो सत्य है कि श्रीकृष्ण की राधा से कोई शारीरिक सम्बन्ध नहीं था, जैसा ब्रह्मवैवर्त पुराण, विद्यापति, जयदेव, सूरदास तथा आधुनिक कवियों ने अष्ट मैथुन (ध्यान, दर्शन, स्पर्श, कथा, परस्पर क्रीड़ा, एकान्त सेवन, आलिंगन सहवाद आदि) का वर्णन किया है। फिर कथावाचक धर्माचार्य उन ग्रन्थों का विरोध क्यों नहीं करते? और अपनी कथा सभाओं में 'राधा रमण' हरि की जय क्यों बुलवाते हैं? यदि राधा कृष्ण के समकालीन थी और कृष्ण ने राधा के साथ वह सब किया, जो पुराणों व कवियों ने लिखा है, तो क्या पौराणिकों के भगवान अपनी भक्तिनी के साथ यही करते हैं? फिर आशाराम बापू को ही क्यों जेल में डाल रखा है? राधा को भक्तिनी कहने वाले बतायें कि राधा-कृष्ण के चित्र पति-पत्नी की अवस्था में क्यों मिलते हैं और उनके नाम सीता राम की तरह क्यों बोले जाते हैं? भगवान के साथ भक्तिनी की भी पूजा करना कहाँ का नियम है?

यह ठीक है कि पुराणों में कुछ (प्राचीन व नवीन) ऐतिहासिक सामग्री है, पर यह भी सत्य है कि इनके आसमानी वर्णन ने राम-कृष्ण के इतिहास को भी उपेक्षित करवा दिया। भोले भक्त भले ही पुराणों के वर्णन पर रीझते रहें, पर सत्य अन्वेषक इतिहासकार तो खुली घोषणा करते हैं- "पुराण एक गपोड़ गाथाओं का भण्डार हैं, जो सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ व संस्कृत के पं० चिन्तामणि विनायक वैद्य के मतानुसार ई० सन् 300 से 900 के बीच बने हैं। पुराणों को शुद्ध इतिहास का महत्त्व नहीं दिया जा सकता।" (श्री जगदीश चन्द्र गहलोत, राजस्थान के राजवंशों का इतिहास)

तर्क व प्रमाण से द्वेष करने वाले किसी पौराणिक कवि ने राधा के 'र' कार बिना कृष्ण को आधेश्याम कहा था-

जो पै ये न होय रानी, राधे कौ रकार हूतो।
मोरे जानी राधेश्याम, आधेश्याम रहते।।

इसका उत्तर देते हुए आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी अमर स्वामी जी ने 'दयानन्द सन्देश' 1982 (दसवां अंक) में लिखा-

अविद्या की आँधी जब आयी भारत देश बीच।
वैदिक विधान विशाल गढ़ अब ढह गये।
बड़े-बड़े पण्डित प्रचण्ड पाण्डित्य पूर्ण
पौराणिक प्रपंच के प्रवाह मध्य बह गये।
"अमर" इतिहास को बिगाड़ा कथा-वाचकों ने।
रुक्मिणी को छोड़ मूढ़ राधा कृष्ण कह गये।
राधा का नाम जब आया योगिराज संग।
मेरे जान पूरे कृष्ण आधे कृष्ण रह गये।।

❑❑

वैदिक मन्त्रों के अर्थीकरण में ऋषि आदि का महत्व

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो.-09845058310)

प्रत्येक वैदिक मन्त्र के चार अवयव होते हैं, जो उसके अर्थ-निर्धारण में महत्वपूर्ण होते हैं। ये हैं- ऋषि, देवता, छन्द व स्वर। वैदिक-छन्दो-मीमांसा में पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी ने इस विषय पर विस्तार से मन्थन किया है और छन्द का कुछ महत्व दिखाया है। विशेषरूप से उन्होंने दिखाया है कि, जबकि वेदों के प्राचीन व्याख्याकारों ने छन्द की महत्ता को माना है, तथापि अर्थीकरण में उसका उपयोग नहीं दिखाया है। युधिष्ठिर जी ने छन्द और स्वर में एक सम्बन्ध भी बताया है, जिससे कि हर छन्द के साथ एक स्वर जुड़ा है। इसलिए छन्द और स्वर को अलग-अलग समझना उन्होंने लाभकर नहीं समझा। प्रमुखतया, भाष्यकार देवता का उपयोग विषय्-निर्धारण में करते हैं, परन्तु वह भी उतना नहीं, जितना अपेक्षित है। ऋषि के विषय में यह मान्यता बहुत काल से रही है कि वह मन्त्र का द्रष्टा, प्रत्यक्षकर्त्ता के नाम हैं। यास्क ने निरुक्त में इसको कहा और स्वामी दयानन्द ने भी ऐसा ही लिखा। इसके आधार पर कुछ विद्वान् मानते हैं कि जो भी कोई ऋषि मन्त्र का विशेष उपयोग करे, अथवा विशेष प्रसार करे, उसका नाम भी मन्त्र से जोड़ा जा सकता है। उनके मतानुसार स्वामी दयानन्द का नाम भी कुछ मन्त्रों से जोड़ा जा सकता है, जैसे शूद्रों के लिए भी वेद का सुनना-सुनाना, पढ़ना-पढ़ाना वर्जित नहीं है, ऐसे उपदेश वाला यह मन्त्र- यथेमां वाचं कल्याणीं (यजु० 26/2) यदि ऐसा सत्य हो, तो इस अंश की वेदार्थ में कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए परन्तु यह भूमिका होती है, ऐसा वेदभाष्यकार स्कन्दस्वामी के मत से प्रतीत होता है, परन्तु कैसे, यह स्पष्ट नहीं बताया गया है। युधिष्ठिर जी स्वयं लिखते हैं- "ऋषि मन्त्रार्थ में कैसे उपयोगी होते हैं, यह अभी हमारी समझ में पूरी तरह नहीं आया (वैदिक-छन्दो-मीमांसा, पंचम अध्याय, पृष्ठ 69, टिप्पणी)"। स्पष्ट है कि इन अवयवों के अर्थीकरण में प्रयोग की विद्या बहुत काल से लुप्तप्राय है। तथापि मुझे इस विषय में कुछ समझ में आया, उसी को यहाँ लेखबद्ध कर रही हूँ।

छान्दोग्य के प्रथम प्रपाठक, तृतीय खण्ड में ध्यानोपासना की, या वेदों के अर्थ-प्रत्यक्ष करने की विधि दी गई है। ऋषि लिखते हैं-

अथ खल्वाशीः समृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत येन साम्रा स्तोष्यन् स्यात् तत् सामोपधावेत्।। यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां देवतामभिष्टोष्यन् स्यात् तां देवतामुपधावेत।। येनच्छन्दसा स्तोष्यन् तच्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात् तं स्तोममुपधावेत्।। 1/3/8-10।।

अर्थात् अब मोक्ष-कामना की समृद्धि (वृद्धि) को पाऊँ (मोक्ष प्राप्त करूं), यह सोचकर उपासना करे। कैसे? सो कहते हैं- जिस साम (वेदमन्त्र) से स्तुति करनी है, उस साम का ध्यान करें। (वह) जो ऋचा (पुनः वेदमन्त्र ही) (चुनी) हो, उस ऋचा का, उसका जो ऋषि उसका और उसकी जिस देवता की स्तुति करनी है, उसका ध्यान करें। (उसके) जिस छन्द के द्वारा स्तुति करनी है, उसका ध्यान करें। जिस स्तोम के द्वारा स्तुति करनी है, उसका ध्यान करें।

यहाँ स्तोम का अर्थ 'सामवेद के स्तुति-समूह' किया गया है, जो कि रूढी अर्थ है। इन तीनों वाक्यों का अर्थ भी यज्ञपरक किया गया है। जैसा मैंने पिछले मास के लेख में दर्शाया था, यहाँ यज्ञ का प्रसंग लेना असंगत है। यहाँ मोक्षार्थी की कामना, अर्थात् मोक्ष का ही प्रसंग चल रहा है। वेद-मन्त्रों का प्रत्यक्षीकरण उसके लिए

अनिवार्य है। यह श्रवण-चतुष्टय का अन्तिम सोपान 'साक्षात्कार' भी है। पुनः, ऋचा पर ध्यान करने के कारण, यहाँ स्तोम का अर्थ 'स्वर' करना संगत लगता है। ऐसा करने पर ज्ञात होता है कि उपनिषत्कार कह रहे हैं कि किसी वेद-मन्त्र को प्रत्यक्ष करने के लिए उस मन्त्र पर ध्यान लगाएँ, उसके ऋषि, देवता, छन्द और स्वर अवयवों के साथ। अर्थात् ये अवयव पूर्णरूप से अर्थ करने के लिए अत्यधिक आवश्यक हैं।

इस वचन से, और युधिष्ठिर जी द्वारा दिए अन्य वचनों से, हमें पहले तो इस भ्रान्ति को अपने मन से निकाल देना चाहिए कि मन्त्र का ऋषि उसके मन्त्रद्रष्टा का नाम होता है। सम्भव है कि मन्त्र को प्रत्यक्ष कर लेने पर, मुनि अपना नाम मन्त्र के ऋषि पर रख लेते हों, परन्तु इसका उल्टा समझने से इस अवयव का अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। मन्त्रों का अध्ययन करने से यह भी अनेकों बार पाया जाता है कि ऋषि-वाची शब्द मन्त्र में स्थित है। यह भी संकेत देता है कि उस शब्द का मन्त्र के अर्थ से सम्बन्ध है। "ऋषी गतौ" से औणादिक इन् प्रत्यय लगकर 'ऋषि' शब्द सिद्ध होता है। जहाँ इसका एक ओर अर्थ 'प्राप्त करने वाला' होता है, वहीं दूसरी ओर 'प्राप्त कराने वाला' भी होता है। सो, यहाँ इसी दूसरे अर्थ में इसका प्रयोग है- ऋषि मन्त्र के अर्थ को प्राप्त कराता है। यह भी विचार करना चाहिए कि जिस प्रकार मन्त्रों के पदक्रम, छन्द, आदि, परम्परा से सुरक्षित रखे गए हैं, क्योंकि उन्हें ईश्वर-प्रदत्त माना गया, उसी प्रकार मन्त्र के ऋषियों को भी सुरक्षित रखा गया है। उन्हें मनमाने रूप से बदला नहीं जा सकता। और जो हम सोचें कि ये मन्त्रों के पहले मन्त्रद्रष्टाओं के नाम हैं, इसलिए इन्हें बदला नहीं जा सकता, तो फिर हमें ऋग्वेद के सभी मन्त्रों का ऋषि अग्नि मिलना चाहिए, यजुर्वेद का वायु, साम का आदित्य और अथर्व का अङ्गिरा, क्योंकि अनेकों प्रमाणों से ये ही इन विभागों के पहले मन्त्रद्रष्टा हैं। इसलिए मन्त्र के ऋषि को मन्त्रार्थ प्राप्त कराने वाला ही जानना चाहिए। जहाँ देवता मन्त्र का मुख्य विषय होता है, वहाँ ऋषि को मन्त्र का द्वितीय विषय समझना चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है।

दूसरे, युधिष्ठिर जी ने जो हर छन्द का सात स्वरों में से एक से नित्य सम्बन्ध बताया है, वह सम्बन्ध होते हुए भी, छन्द और स्वर के भिन्न अर्थ सम्भव हैं, सो उनको अपने स्वरूप से भी समझना चाहिए। प्रमुख सात छन्द और उनसे सम्बद्ध स्वर इस प्रकार हैं-

छन्दोनाम	अक्षरसङ्ख्या	स्वर
गायत्री	24	षड्ज
उष्णिक्	28	ऋषभ
अनुष्टुप्	32	गान्धार
बृहती	36	मध्यम
पङ्क्ति	40	पञ्चम
त्रिष्टुप्	44	धैवत
जगती	48	निषाद

जबकि भेद-प्रभेदों से वैदिक छन्द अनेक हैं, ये सात ही प्रमुखता से पाए जाते हैं।

अब हम इन अवयवों से अर्थीकरण में सहायता दर्शाने के लिए, यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय, जो कि ईशावास्योपनिषद् के नाम से भी अति प्रसिद्ध है, के कुछ मन्त्रों को देखते हैं। पहले दो मन्त्र हैं:

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।
यजु० 40/1।।
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।
यजु० 40/2।।

ऋषिः-दीर्घतमा, देवता-आत्मा, छन्दः-अनुष्टुप्, स्वरः-गान्धारः।

पदानुसार मन्त्रार्थ- जो कुछ भी इस ब्रह्माण्ड में गम्यमान हाता है (बदलता है, अर्थात् सभी विद्यमान् पदार्थ), वे सब ईश से व्याप्त हैं (ईश्वर उनमें रहता है)।

इस कारण से, (हे जीवात्मा!) तू इस संसार को त्याग से भोग, लालच से नहीं, क्योंकि वास्तव में यह धन किसका है, अर्थात् तुम्हारा तो कुछ भी नहीं है, सब परमात्मा का ही है।।1।।

यहाँ (इस संसार में) कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की कामना कर। केवल इस प्रकार (बिना फल की अत्यधिक कामना करते हुए, सर्वदा कर्म करते हुए और दीर्घायु की कामना करते हुए), और अन्य किसी भी प्रकार से नहीं, किया हुआ कर्म लिप्त नहीं होता (उसका फल हमको नहीं भोगना पड़ता, अर्थात् यहाँ निष्काम कर्म की परिभाषा है)।।2।।

अब हम मन्त्रों के अन्य अवयवों को देखते हैं, पहला, देवता आत्मा। प्राचीन शास्त्रों में 'आत्मा' का अर्थ परमात्मा या जीवात्मा, अथवा दोनों होता है। इस मन्त्र में दोनों का ही विषय है- जहाँ एक ओर प्रभु के सब वस्तुओं का ईश्वर होना और सर्वव्यापक होने का अर्थ है, वहीं जीव को कैसे जीना चाहिए, यह भी बताया गया है। इसलिए ये दोनों ही अर्थ यहाँ सङ्गत हैं।

दूसरा, दीर्घतमा ऋषि। दीर्घतमा का अर्थ है 'सबसे लम्बा'। सो, इन मन्त्रों में जीवन को लम्बा करने का विषय स्पष्ट रूप से उपलब्ध है। उसकी दूसरी महत्ता का है- किस प्रकार जीवन जिया जाये जो वह लम्बा और स्वस्थ हो। इस प्रकार ऋषि शब्द यहाँ विशेष बोध कराता है- **जो हम कर्मठ, त्यागपूर्ण जीवन जीयेंगे और लम्बे जीवन की कामना करते हुए किसी भी दुष्प्रवृत्ति में नहीं पड़ेंगे, तो जीवन लम्बा होना स्वाभाविक है।**

तीसरा, अनुष्टुप् छन्द। यह थोड़ा कठिन है, क्योंकि शास्त्रों में हमें इसकी व्याख्या नहीं मिलती। तथापि महर्षि दयानन्द के वचन हमें अन्य रूप से प्राप्त होते हैं। वे ही हमारे मार्गदर्शक बन जाते हैं। यजुर्वेद के चौदहवें अध्याय में देवताओं और छन्दों का वर्णन है। वहाँ दसवें मन्त्र में, महर्षि अर्थ करते हैं- **अनुस्तौति यया सा अनुष्टुप** - अर्थात् पश्चात् या अनुकूलता से स्तुति जिससे की जाए। अठारहवें मन्त्र पर वे कहते हैं- **सुखानामनुष्टम्भनम् अनुष्टुप्**- अर्थात् सुखों का जो आलम्बन हो। यहाँ **'ष्टभु स्तम्भने'** भ्वादिगणीय धातु से 'अनुष्टूप्' की निष्पत्ति की गई है, जबकि पूर्व अर्थ में 'ष्टुञ् स्तुतौ (भ्वादि)' को लिया गया है। एक और धातु भी यहाँ सम्भव है- **'ष्टुप समुच्छ्राये'**, अर्थात् उद्धार करने वाला। अब यदि हम यहाँ देखें, तो पहले मन्त्र में कहा गया है कि यदि ईश्वर को ही संसार की प्रत्येक वस्तु का स्वामी मानकर इस जीवन को जीओगे, तो वह जीवन सुखों की खान हो जायेगा और तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। इस प्रकार यहाँ पश्चाद् भाव, सुखालम्बन भाव और उद्धार-भाव, तीनों ही उपलब्ध हो जाते हैं। इस पश्चात्-भाव से बोध होता है कि पहले परमात्मा की सत्ता, फिर उसके ऐश्वर्य को जानना आवश्यक है। तदनन्तर, हममें धार्मिक प्रवृत्ति की वृद्धि होगी, और धार्मिक जीवन से सुखों की प्राप्ति होगी।

चतुर्थ, गान्धार स्वर। जबकि यहाँ हमें प्रमाण नहीं उपलब्ध होता, तथापि महर्षि के अन्य वचनों से हम अर्थ कर सकते हैं कि इसका अर्थ है- **'यः गां धारयति'**- जो पृथिवी का धारण करवाए, अर्थात् पृथिवी पर इस जीवन या शरीर को देने वाला भी वह परमपिता परमेश्वर ही है। यदि हम ऐसा जानकर जीयेंगे, तो और भी सुख पावेंगे। सो, यहाँ 'बदलने वाली वस्तुओं' से निर्जीव **वस्तुओं का ही ग्रहण न किया जाय, अपितु जीवन शरीर को भी उसी की सम्पत्ति माना जाय, यह अर्थ स्वर प्रदर्शित करता है। है न अति सुन्दर अर्थ?!**

अवश्य ही सर्वत्र अनुष्टुप् छन्द और गान्धार स्वर के यही अर्थ नहीं होंगे, प्रसङ्गानुसार हमें इनका अर्थ समझना पड़ेगा। पाठक स्वयं अनुसन्धान करें।

अधिक स्पष्टीकरण के लिए मैं एक और उदाहरण लेती हूँ-

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव

वयुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम।। यजु० 40/16।।

ऋषिः - दीर्घतमा, देवता - आत्मा, छन्दः - त्रिष्टुप्, स्वरः - धैवतः।।

पदानुसार मन्त्रार्थ- हे कर्मों का बोध कराने वाले परमेश्वर अग्ने! आप हमें विभिन्न धनों को प्राप्त कराने के लिए सुमार्ग से ले जाएँ। हे दिव्य गुणों वाले देव! आप हमारे बारे में सब जानते हैं। (इसलिए) कृपया, हमसे हमारा कुटिलता और पापयुक्त व्यवहार दूर कर दीजिए। इसके लिए हम आपकी बारम्बार सत्कारपूर्वक स्तुति करते हैं।

देवता आत्मा यहाँ भी जीवात्मा ओर परमात्मा के अर्थ में है। जीवात्मा को सुमार्ग का उपदेश है, और उस पर चल सकने का निमित्त-कारण परमात्मा है।

यहाँ दीर्घतमा ऋषि का भी वही अर्थ है- जो हम पापयुक्त और कुटिलता को दूर करेंगे और परमात्मा की उपासना करेंगे, तो हमारी आयु दीर्घ होगी। यह अर्थ इस मन्त्र में सीधे नहीं उपलब्ध है, केवल ऋषि प्राप्त कराता है।

छन्द यहाँ त्रिष्टुप् है। पुनः यजु० 14/10 पर महर्षि कहते हैं, "त्रयः कर्मोपासनाज्ञानादि स्तुवन्ति यया सा त्रिष्टुप्" अर्थात् जिससे तीन की स्तुति की जावे। यहाँ इन तीन को उन्होंने कर्म, उपासना और ज्ञान कहा है। यजु० 14/18 के भाष्य में महर्षि कहते हैं, **"यया त्रीणि सुखानि स्तोभते सा त्रिष्टुप्"** अर्थात् जिससे तीन सुखों का आश्रयण हो। पूर्ववत् यहाँ **''षटभु स्तम्भने''** और **''ष्टुञ् स्तुतौ''** (भ्वादि)' का प्रयोग किया गया है। पुनः, **'ष्टुप समुच्छ्राये'** धातु यहाँ भी सम्भव है। पहला अर्थ यहाँ बिल्कुल ठीक बैठ जाता है- कर्म कुटिलता और पाप से पृथक् हों, स्तुतियों से हम प्रभु की उपासना करें और परमात्मा हमारी बुद्धि को शुद्ध करे, जिससे हम सन्मार्ग पर चलें। इनको तीन प्रकार से उद्धार भी माना जा सकता है। स्तुत्यर्थ मे विचित्र बात सामने आती है- इस मन्त्र में तीन ही स्तुतियाँ हैं- अग्नि, देव और विद्वान्! यह देखकर मुझे बहुत ही अचम्भा हुआ। तथापि सर्वत्र ऐसा ही हो, यह आवश्यक नहीं है। आवश्यक है तो यह कि त्रिष्टुप् मन्त्र में हमें तीन प्रकार का कोई उपदेश या स्तुति मिलेगी।

धैवत स्वर का शास्त्र में मुझे कोई अर्थ नहीं मिला। मेरे अनुसार यह धीवत् से तद्धित अण् प्रत्यय लगकर बना है। धीवत् का अर्थ है- बुद्धिमान्, प्रज्ञावान्। तो, धैवत का अर्थ हुआ- बुद्धिमान् होने या ज्ञान, धारणा-शक्ति विषयक। मन्त्र में एक ओर परमात्मा के ज्ञान का वर्णन है, जहाँ उन्हें हमारे बारे में सब ज्ञान रखने वाला बताया गया है, वहीं दूसरी ओर, जो व्यवहार से कुटिलता और पापाचरण को दूर करने का उपदेश है, वह वस्तुतः प्रधानतया बुद्धिविषयक है, यह निर्देश हम स्वर से समझ सकते हैं। परमात्मा हमारी वाणी और क्रियाओं को ही केवल शुद्ध करेंगे, तो वह शुद्धि अपूर्ण होगी। परन्तु, जो वे बुद्धि से इन अधर्मों को निकाल देंगे, तो वाणी और क्रिया तो स्वयं शुद्ध हो ही जायेंगी! सुपथ के विषय में भी ऐसा ही है। इसीलिए महर्षि दयानन्द ने अपने भाष्य में लिखा है- "जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते, यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते, और सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं, उनको दयालु परमेश्वर पापाचरण-मार्ग से पृथक् कर, धर्मयुक्त मार्ग में चला के, विज्ञान देकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिए समर्थ करता है।" इस प्रकार इस मन्त्र में हमें बुद्धिमान् बनाने की प्रार्थना है। यही है धैवत स्वर का रहस्य! उपर्युक्त महर्षि के वचन में आप तीन प्रकार के कितने उपदेश हैं, यह भी देखें।

विस्तारभय से मैं अन्य उदाहरण नहीं दे रही हूँ। पाठकों से आग्रह है कि वे स्वयं इस प्रकार मन्त्रों के अर्थ खोजें। विद्वज्जन अवश्य अपनी प्रतिक्रिया देने की कृपा करें।

❑❑

विजयादशमी पर्व पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श जीवन के अनुरूप स्वयं को बनाने का व्रत लें

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

विजयादशमी पर्व से हमारे पूर्वजों व देशवासियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के आदर्श जीवन व उनके कृतित्व को जोड़ा है। यद्यपि आश्विन शुक्लादशमी को मनाई जाने वाली विजयादशमी का श्री रामचन्द्र जी की लंकेश रावण पर विजय की तिथि से कोई ऐतिहासिक सम्बन्ध नहीं है, परन्तु भारत की वैदिक धर्म व संस्कृति के आदर्श होने के कारण और विजयादशमी का पर्व प्राचीन काल से क्षात्रधर्म से जुड़ा होने के कारण क्षात्रधर्म के मूर्त व आदर्श रूप मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को स्मरण करने का दिवस तो निश्चय ही है। यदि क्षात्रधर्म के पर्व पर श्री रामचन्द्र जी को स्मरण न किया जाये तो उनके समान अन्य कम ही हैं, जिन्हें हम स्मरण कर सकते हैं और उनके जीवन से प्रेरणा ले सकते हैं। हम समझते हैं कि आज के दिन हमें योगेश्वर श्री कृष्ण और उनके व्यक्तित्व व कृतित्व की स्मरण कर उनके जीवन से भी प्रेरणा ग्रहण करने का व्रत लेना चाहिये। इससे न केवल हमारा जीवन लाभान्वित होगा, वरन् देश और समाज को भी लाभ होगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि श्री रामचन्द्र जी ने ऋषियों के यज्ञों में विघ्न डालने-वाले असुरों व राक्षसों का नाश किया था, जिससे विश्व का कल्याण करने वाले यज्ञों की रक्षा हुई थी। इन्हीं यज्ञों को उन्नीसवीं सदी में वेदों के तलस्पर्शी विद्वान् आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने पुनः प्रचलित किया है। विजयादशमी का दिन आज हमें श्री रामचन्द्र जी के जीवन से प्रेरणा लेने सहित यज्ञों की रक्षा करने व स्वयं यज्ञ एवं उनके आदर्शों को अपने जीवन में धारण करने की भी अपेक्षा करता हुआ प्रतीत होता है। श्री रामचन्द्र जी में जो ज्ञान, बल, आचरण था, वह वेदों की शिक्षा, ऋषि-मुनियों की संगति व यज्ञों के कारण था। अतः हमें भी वेदाध्ययन कर अपने जीवन में ज्ञान व बल की वृद्धि करने के साथ उनका आचरण करना है और ईश्वरीय वाणी वेद और वेदज्ञान के वाहक ऋषियों की आज्ञा के अनुसार प्रतिदिन पंचमहायज्ञों को धारण व आचरण में लाकर, इससे स्वयं उन्नत होकर संसार को भी उन्नत करना है।

श्री रामचन्द्र जी का जीवन इसलिए भी अनुकरणीय है कि उन्होंने देश व समाज से आसुरी व राक्षसी प्रवृत्तियों को दूर करने के साथ देश के ऋषि-मुनियों को सताने व उनके यज्ञीय कार्यों में बाधा डालने वाली राक्षसी स्वभाव के लंकापति राजा रावण को दण्डित किया था। सत्य की रक्षा के लिए दुष्टों को दण्डित करना आवश्यक होता है, नहीं तो सत्य का व्यवहार समाप्त होकर देश व समाज मे अनुशासन नहीं रहता और इससे धार्मिक व सदाचारी लोगों को दुःख व कष्ट होता है। श्री राम व श्री कृष्ण जी की सन्तानें हैं। इस कारण कि हमारे सबके पूर्वज राम व कृष्ण से जुड़े हुए हैं। यह इस कारण भी है कि प्राचीन काल में गुण, कर्म व स्वभावानुसार वर्ण परिवर्तन होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र बन जाते थे और क्षत्रिय व वैश्य गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार अनेक उन्नत व निम्न वर्णों को प्राप्त होते थे। अतः श्री राम व श्री कृष्ण सभी वर्णों के साझे पूर्वज हैं और हम उन्हीं की सन्ततियाँ हैं। अतः हमें उनको ही आदर्श मानकर उनका अनुकरण व अनुसरण करना है। यह भी हमारा कर्तव्य व धर्म है।

हम जानते हैं कि श्री राम व श्री कृष्ण यज्ञों के प्रेमी थे। यज्ञ परोपकार का सर्वश्रेष्ठ कार्य व उदाहरण है। इससे वायु शुद्ध होती है और पर्यावरण को लाभ होता है। वायु शुद्ध करने का यज्ञ के समान दूसरा उपाय संसार में वैज्ञानिकों के पास भी नहीं है। यज्ञ का

शेष पृष्ठ 18 पर

प्यारा आर्यसमाज

[पं० नन्दलाल, निर्भय, भजनोपदेशक, आर्य सदन बहीन, जनपद, पलवल (हरियाणा)]

ऋषि दयानन्द का प्यारा आर्य समाज।
आर्यसमाज जगत हितकारी, करता सुनो सुकाज।।

सकल जगत में हुआ न कोई, ऋषि बरसा पर उपकारी।
ईश्वरभक्त सदाचारी, विद्वान्, साहसी, तपधारी।।
योगी, गुणी, बहादुर बांका, त्यागी, वीर ब्रह्मचारी।
विद्या का भंडार, तार्किक, दयावान अरु बलधारी।।

मानवता का पुंज था स्वामी, जग का था सरताज।
आर्यसमाज जगत हितकारी, करता सुनो सुकाज।।१।।

पावन वैदिक मर्यादा को, भूल गए थे नर-नारी।
अविद्या रूपी अंधकार में, भटकी थी दुनियां सारी।
जाति-पाति की, ऊँच-नीच की, पनप गई थी बीमारी।
अबलाओं का अरु गऊओं का, करुण क्रन्दन था जारी।।

धूर्त नास्तिक अंग्रेजों का, भारत में था राज।
आर्यसमाज जगत हितकारी करता सुनो सुकाज।।

स्वामी विरजानन्द का सच्चा, शिष्य दयानन्द था प्यारा।
जिसके बल, विद्या के आगे, नतमस्तक था जग सारा।
कर्म प्रधान जगत में केवल, जिसका था अद्भुत नारा।
वेद विरोधी सभी पछाड़े, स्वामी कभी नहीं हारा।।

भारी कष्ट उठाए ऋषि ने, त्यागे सब सुख साज।
आर्यसमाज जगत हितकारी, करता सुनो सुकाज।।३।।

भारी दुःख है, भारतवासी देवगुरु को भूल गए।
धन, बल, उच्च पदों को पाकर, अज्ञानी जन फूल गए।
अंडे, मांस लगे खाने, मदिरा में हो मशगूल गए।
धर्म, कर्म तज दिया और वेदों के हो प्रतिकूल गए।।

नकल पापियों की करते हैं, तनिक न आती लाज।
आर्यसमाज जगत हितकारी, करता सुनो सुकाज।।४।।

भारत वीरो! सुनो ध्यान से, अगर नहीं तुम जागोगे।
मिट जाओगे, काम, क्रोध, लालच को अगर न त्यागोगे।।
सुख पाओगे, उपदेशक, विद्वानों का सम्मान करो।।
वेदों का प्रचार कराओ, दुखी जनों की पीर हरो।।

नन्दलाल निर्भय अब तो, आदत से आओ बाज।
आर्य समाज जगत हितकारी, करता सुनो सुकाज।।५।।

बौद्धों के ब्रह्मदेश (म्याँमार) के रंगून से एक पाती-

आर्य समाज मंदिर, 166 अनोरठा मार्ग, रंगून (बर्मा) 5 अक्टूबर 2015

सादर नमस्ते। ईश्वर कृपयात्र कुशलं तत्रास्तु।

22 सितम्बर 2015 को एयर इंडिया के वायुयान से मध्याह्न साढ़ बारह बजे हम म्याँमार की पूर्व राजधानी रंगून पहुँचे। ये हमारी ग्यारहवीं विदेश यात्रा है। इसके पूर्व हम विश्व के पाँच महाद्वीपों के 12 देशों व भारत के 27 प्रान्तों में वैदिक धर्म का प्रचार कर चुके हैं। 5 अक्टूबर सोमवार को सायं 6.30 बजे म्याँमार में भारत के महामहिम राजदूत श्रीयुत गौतम मुखोपाध्याय जी (Indian High Commissioner) से उनके निवास पर जाकर एक शिष्ट मंडल के साथ मुलाकात की। आपसे वर्मा की वर्तमान राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों पर चर्चा की। वैदिक सिद्धान्तों पर विचार विमर्श किया और सत्यार्थ प्रकाश व अन्य वैदिक साहित्य भेंट किये, स्वाध्याय की प्रेरणा की। उ.प्र. मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र के संयुक्त क्षेत्रफल के बराबर 6,78,578 वर्ग कि०मी० का छोटा सा देश म्यांमार है। बिहार के गया से 1550 कि०मी० व दिल्ली से इसकी दूरी 2500 कि०मी० है। एशिया के मानसून क्षेत्र में स्थिति इस का अधिकतम भाग कर्क रेखा व भूमध्य रेखा में है। इसकी सीमा चीन, लाओस देश थाईलैंड, बांग्लादेश के साथ-साथ भारत के अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम व मणिपुर इन चार प्रान्तों को स्पर्श करती है। बंगाल की खाड़ी व अंडमान सागर के निकट होने के कारण गैस व पेट्रोल उत्पादक देश भी ये हैं। प्राचीन काल से आर्यावर्त्त का एक भूभाग रहे इस देश को अंग्रेजों ने तीन बार में 1824 में गुलाम बना लिया था। अप्रैल 1937 में यह स्वतन्त्र उपनिवेश बन गया था पर जापान के कारण 1948 में यह स्वतन्त्र हो सका। 1962 से 2011 तक यह गृहयुद्ध व सैनिक शासन से अभिसंतप्त रहा है अतः इसका यथोचित विकास न हो पाया। यहाँ की मुद्रा को Kyat कहते हैं जो भारत के 1 रुपये में 20 के बराबर है। यहाँ बर्मी भाषा बोली जाती है, जो संस्कृत की पाली भाषा का विकृत रूप है। यहाँ की जनसंख्या 5 करोड़ 32 लाख है, जिसमें बौद्ध 80% इसाई 7%, मुस्लिम 4%, आदिवासी 6%, हिन्दु 2% व अन्य 1% हैं। 99.9% रहवासी माँसाहारी हैं। बहुसंख्यक भारतीय मूल के जन तम्बाकू, पान, मद्यपान आदि दुर्व्यसनों से ग्रस्त है। सैनिक प्रशासन ने एक नीति के तहत संसद में 25% सीटे सैनिकों के लिये आरक्षित कर दी हैं, जिससे उनका वर्चस्व सदैव बना रहे। मुसलमान यहाँ कुछ भय से रह रहे हैं। सैनिक शासन के दौरान इनको इतना प्रताड़ित किया गया कि 10 वर्षों में 3000 ग्राम खाली हो गये थे और 2 लाख मुस्लिम बांग्लादेश में शरणार्थी बन गये थे। यहाँ 14 राज्यों 63 जिले हैं, जिनमें 30 आर्यसमाजें सक्रिय हैं, जिनमें प्रतिसप्ताह सत्संग होता है। 1885 व उसके बाद के वर्षों में बिहार, उ०प्र० गुजरात, राजस्थान, बंगाल, आंध्र आदि प्रान्तों के कृषक, व्यापारी, श्रमिक यहाँ आये थे उनकी चौथी, पाँचवी पीढ़ी चल रही है, जो बौद्धों के इस देश की स्थाई निवासी बन गई है। 1896 में आर्य समाज की विचारधारा इस देश में पहुँची और वैदिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। 1960 में पूज्य आनन्द स्वामी जी, 1962 में स्वामी ध्रुवानंद जी व 1980 में (डॉ०) स्वामी सत्यप्रकाश जी यहा आये थे। पुनः कोई गुरूकुलीय स्नातक यहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा बुलाया नहीं जा सका है। आर्य सभा वर्मा द्वारा माण्डले आर्यसमाज के तीन मंजिला वातानुकूलित नवनिर्मित भवन के उद्घाटन यज्ञ हेतु हमें आमंत्रित किया गया था, जिसमें पूरे देश के लगभग सभी आर्य समाजों के आर्यबन्धु सम्मिलित हुए थे। इसी कार्यक्रम में बाद में आये माण्डले क्षेत्र के

कैबिनेट मंत्री श्रीथान सो मियम्ब जी को हमने बर्मी भाषा का सत्यार्थप्रकाश भेंट किया व पढ़ने की प्रेरणा दी। लगभग 6-7 आर्यसमाजों के 15 सार्वजनिक मंचों पर व 15 परिवारों में हमें अपनी बात को रखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वेदों के आविर्भाव, ईश्वर के वेदोक्त स्वरूप, 16 संस्कार, शुद्ध आहार सहित अनेक विषयों पर हमने विस्तारपूर्वक चर्चा की। अनेक वेदमंत्रों की व्याख्या की। बौद्ध विचारों की ओर जन सामान्य का भयावह झुकाव देखकर खण्डन किया, नवपीढ़ी को सभालने हेतु टिप्स दिये। योगदर्शन के समाधि पाद के 35 सूत्र व साधनपाद के 15 सूत्र पुरोहित वर्ग व कुछ अन्यों को पढ़ाये। यहाँ संसदीय चुनाव नवंबर में होने वाले हैं। 40 वर्षों से लोकतंत्र के लिए संघर्षशील नोबल पुरस्कार प्राप्त बहन सुश्री आंग सूजी के जीतने की संभावना व्यक्त की जा रही है। पूरे देश में सैकड़ों बौद्ध विहार, स्तूपों का जाल बिछा हुआ है। गरम पानी काझरना, चिड़ियाघर, तिलक, गाँधी, नेहरू की स्मृति रूप माण्डले की जेल, आदि बहुत से दर्शनीय स्थल हैं।

सन्तों, साधकों, विद्वानों, मनीषियों ने ये बात कही है कि अपने आपको धोखा देना बहुत सरल है- क्योंकि वहाँ रोकने वाला कोई भी नहीं है। गृहमंदिर व आर्यसमाज में सभी को नमन कहें।

आपका अपना ही-आचार्य आनंद पुरुषार्थी
अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक मशीनरी

पृष्ठ 15 का शेष

मुख्य आधार गोघृत है। अतः गोपालन व गोरक्षा भी यज्ञ से जुड़ी हुई है। इसलिये प्रत्येक वैदिक धर्मी राम व कृष्ण के अनुयायी को यज्ञ की रक्षा करने हेतु स्वयं इसको प्रतिदिन सम्पन्न करना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने दीर्घ काल से बन्द यज्ञ की परम्परा को वैदिक काल के अनुसार प्रचलित कर इसे सरल व सर्वत्र सुलभ करा दिया है। सभी आर्य विचारधारा के लोग प्रतिदिन यज्ञ करते ही हैं। यज्ञकर्ता, गोपालक व गोरक्षक ही वस्तुतः श्री राम व श्री कृष्ण के अनुयायी कहलाने के अधिकारी हैं। इस पर सभी सनातन धर्मी भाइयों को विचार करना चाहिये और ओ३म् नाम तथा वेद के विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों के अन्तर्गत संगठित होकर वेदों, सनातन वैदिक धर्म व संस्कृति का प्रचार व प्रसार करना चाहिये। यह ध्यान में रखना चाहिये कि संसार में केवल वेद और वैदिक धर्म ही ऐसी जीवन शैली है जो विश्व से अशान्ति, अधर्म तथा पाप को मिटा कर शान्ति, धर्म व शुभ कर्मों को स्थापित कर सकती है।

संसार में बहुत से महापुरुष व वैज्ञानिक आदि हुए हैं। हम जब भी किसी महापुरुष या वैज्ञानिक की जयन्ती मनाते हैं तो हम क्या करते हैं? उनके जीवन, विचारों, गुणों व कार्यों का स्मरण कर उनमें संशोधन, संवर्धन व प्रचार की प्रेरणा प्राप्त कर उसके प्रसार का ही तो व्रत लेते हैं। अतः विजयादशमी एवं दीपावली पर्व पर भी हमें ऐसा ही करना है। हमें श्री रामचन्द्र जी व श्री कृष्ण जी के जीवन पर विचार करना है और उनके जीवन, कार्यों व आदर्शों को जानकर उनकी प्राप्ति को अपने जीवन का उद्देश्य व लक्ष्य बनाना है। ऐसा करके हम कुछ-कुछ उनके जैसे बन सकते हैं। केवल उनके नाम का कीर्तन करने से कोई लाभ किसी को नहीं होता। विजयादशमी का पर्व मनाते हुए सर्वोत्तम विधि यही है कि हम अपने घरों में वृहत्त यज्ञ-अग्निहोत्रों का आयोजन करें, जिससे परिवार व समाज का वातावरण शुद्ध व पवित्र हो और इससे सभी को स्वास्थ्य व मन की प्रसन्नता का लाभ हो। इसके साथ श्री राम, श्री कृष्ण, चाणक्य, महर्षि दयानन्द, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सरदार पटेल, पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, मदन लाल ढींगरा, शहीद ऊधम सिंह, राम प्रसाद बिस्मिल, भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव आदि का स्मरण कर उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिये।

इन संक्षिप्त शब्दों के साथ हम सभी बन्धुओं को विजयादशमी एवं दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ एवं बधाई देते हैं।

❑❑

शास्त्रानुसार स्वर्ग

(महात्मा चैतन्यमुनि)

विभिन्न मतवादियों ने स्वर्ग के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अनर्गल एवं अविश्वसनीय कल्पनाए कर रखी हैं मगर व्याकरण शास्त्रानुसार 'स्वर्ग' शब्द 'स्वर्' उपपद में 'गम्लृ-गतौ' धातु से **'ड प्रकरणेऽन्येष्वपि दृश्यते।'** अ०3-248 वार्तिकसूत्र से 'ड' प्रत्यय के योग से बनता है। गति के ज्ञान-गमन-प्राप्ति तीन अर्थ होते हैं। 'स्व' सुख का अनुभव होना, सुख में प्रविष्ट होना, सुख की प्राप्ति होना ही स्वर्ग अर्थात् सुख है। इसी प्रकार -स्वर्गलोक' का अर्थ है। **'लोकृ दर्शने'** धातु से लोक शब्द बनता है। जिसका अर्थ 'स्थान' है। जहा स्वर्ग प्राप्त होता है- सुख प्राप्त होता है वह स्वर्गलोक है। स्थान से यहा तात्पर्य किसी विशेष स्थान से नहीं है बल्कि जिस अवस्था में हमें सुख प्राप्त हो, वही स्वर्ग है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने ग्रन्थ **सत्यार्थ प्रकाश** के 'स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकाश' में लिखते हैं-'स्वर्ग'- नाम सुख-विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है। 'नरक'- जो दुःख-विशेष भोग और सामग्री को प्राप्त होना है।' सत्यार्थप्रकाश के नौवें समुल्लास में वे मुक्ति के प्रसंग में स्वर्ग-नरक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं- 'मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान अर्थात् यथावत् होता है। यही सुखविशेष 'स्वर्ग' और विषयतृष्णा में फंसकर दुःखविशेष भोग करना 'नरक' कहाता है। 'स्वः' सुख का नाम है, **'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः, अतो विपरीतो दुःखभोगो (यस्मिन् स) नरक इति'** जो सासारिक सुख है, वह 'सामान्य स्वर्ग' और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है, वही 'विशेष स्वर्ग' कहाता है। 'यहा पर महर्षि ने स्वर्ग को भी दो भागों में बाटकर बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक विचार प्रस्तुत करके संसार को उपकृत किया है।

लोक शब्द का अर्थ है 'जो देखा जाए, जो जाना जाए।' इसके भाव हम इस प्रकार से समझ सकते हैं- स्थान, अवस्था या काल, सुख-विशेष की अवस्था, प्रकाश की अवस्था आदि। लोक शब्द का व्यवहार बहुत से प्रसंगों में किया जाता है, जैसे-कन्या पितृलोक को छोड़कर पतिलोक को जा रही है आदि। जैसे स्वर्ग-लोक कोई स्थान विशेष नहीं है, उसी प्रकार नरक भी कोई स्थान विशेष नहीं है। स्वर्ग का अर्थ सुख है इसलिए नरक का अर्थ दुःख हुआ क्योंकि नरक शब्द स्वर्ग का विपरार्थक है। रामायण के सुप्रसिद्ध टीकाकार गोबिन्दराज ने नरक का अर्थ इस प्रकार किया है- **अत्र नरकः शब्देन दुःखं लक्ष्यते**- यहा नरक शब्द का अर्थ दुःख है। महर्षि यास्क ने निरुक्त में लिखा है- **नरकंन्यरकं नीचैर्गमनम् इति वा।** (1-3-11) अर्थात दुःख, अधःपतन या अवनति का नाम नरक है। नरक का सीधा सा अर्थ है- नीचे जाना, पतन का लोक, निरुक्त में भी कहा है- नीचे जाना, सुख का अभाव।

स्वर्ग तथा मुक्ति के लिए वेदों में अन्य शब्द भी आए हैं- **'सुकृतस्य लोके'** (ऋ० 10-85-24) अर्थात् पुण्य कर्मों के लोक में। **'अमृतस्य लोके'** (ऋ० 10-85-20) अर्थात् अमर लोक में प्रविष्ट हों। निरुक्त में (2-14) भी स्वर्ग के पर्यायवाची नाम, द्यौ तथा सुकृतस्य-लोक दिए हैं। मीमांसा में (6-1-1) 'स्वर्ग' सुख विशेष को माना गया है। स्वर्ग शब्द से स्थान-विशेष व वस्तु विशेष का ग्रहण मीमांसा को स्वीकार्य नहीं है। वेद के अनेक मन्त्रों में द्यौलोक, ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक, मोक्ष तथा सुकृतलोक आदि की चर्चा की गई है।... बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रूहेयम्, इन्द्रस्योत्तमं नाकं रूहेयम्. .. (यजु० 9-10) बृहस्पति और इन्द्र अर्थात् जो ज्ञानवान् व जितेन्द्रिय को विशेष स्वर्ग मिलता है, वह मुझे प्राप्त

हो। महर्षि दयानन्द ने **नाकः** (यजु०15-49) को मोक्ष-सुख लिखा है। **असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।**: (यजु०35-22) यहा पर महर्षि ने स्वर्ग का अर्थ भी मोक्ष-सुख किया है। **स्वर्गलोके:** (यजु०23-20) सुखमय लोक। **सुकृतस्य लोके। (यजु०15-50) पुण्य कर्मों से अर्जित लोक। येन स्वः स्तभितं येन नाकः** (यजु.30-6) यहा पर स्वः का अर्थ सुख तथा नाकः का अर्थ सब दुःखों से रहित मोक्ष किया है। महर्षि ने बहुत से स्थानों पर अमृतम् का अर्थ भी (यजु०30-10, 25-13) मोक्ष-सुख किया है। अमरकोश के अनुसार-

स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदशालयाः।

सुरलोको द्यौर्दिवो द्वेस्त्रियां त्रिविष्टपम्।।(16)

अर्थात् स्वः अव्यय, स्वर्ग, नाक, त्रिदिव, त्रिदशालय, सुरलोक, द्यौ, दिवः और त्रिविष्टप आदि शब्द एक ही पदार्थ के वाचक हैं। स्वर्ग किसे प्राप्त होता है इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में आया है- अविन्ददु दिवो.:.इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः।। (ऋ०1-130-3) ज्ञानी पुरूष शरीरस्थ प्रभु का दर्शन करता है, जितेन्द्रिय बनकर वह प्रभु-प्रेरणा को सुनता है और स्वर्गद्वारों को खोलने वाला होता है। **एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्टयै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा।।** (22-34) एक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्तुति, प्रार्थना, उपासना और पुरुषार्थ करो। शतवर्ष की आयु प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करो। एक सौ एक प्रणव-जप और गायत्री जप के लिए तत्पर हो। अन्धकार दूर करके प्रकाश की प्राप्ति के लिए प्रयास करो। स्वर्गप्राप्ति के लिए प्रयास करो।

ब्राह्मण ग्रन्थों (ता.8-2-5) में कहा गया है-

आथर्वणं लोककामाय ब्रह्मसाम कुर्यत्।। (आथर्वणम्)

स्थायी स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति के लिए ब्रह्मसाम अर्थात् वेदानुसार यम-नियमादि का पालन करके स्वर्ग लोक को प्राप्त करें। एतरेय ब्राह्मण (7-10) में कहा गया है कि श्रद्धा और सत्य के जोड़े से स्वर्ग-लोक को जीता जाता है। कठोपनिषद् में नचिकेता अपने दूसरे वर में स्वर्ग के सम्बन्ध में यमाचार्य से कहता है-

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति तत्र न जरया बिभेति।

उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।

स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्धानाय मह्यम्।

स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण।। (1-12, 13)

स्वर्गलोक में किसी प्रकार का भय नहीं है, न वहा मृत्यु है, न जरावस्था- इन दो ही से तो मनुष्य डरता है, वहा मृत्यु से भी भय नहीं, वृद्धावस्था से भी भय नहीं। स्वर्गलोक में भूख-प्यास इन दोनों प्रवाहों को तर लेते हैं, द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाते हैं, शोक पीछे रह जाता है, आनन्द ही आनन्द रह जाता है। हे यमाचार्य! आप उस स्वर्ग प्राप्त कराने वाली 'अग्नि' को जानते हैं। हे मृत्यो! मैं श्रद्धापूर्वक पूछता हूँ, आप मुझे उसका उपदेश दें। जो स्वर्गलोक मे जाते हैं, उन्हें अमृतत्व-अमरता-प्राप्त होती है। इसलिए 'स्वर्ग-साधक अग्नि' का आप उपदेश दीजिए। द्वितीय वर से मैं यही मागता हूँ।

मनु महाराज ने स्वर्ग शब्द का प्रयोग इहलौकिक सुखों के साथ ही मोक्ष सुख भी किया है। उसी को उन्होंने अक्षयसुख भी कहा है। गृहस्थ प्रकरण में वे कहते हैं-

स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।

सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।।

(मनु०3-79)

स्त्री-पुरुषों! जो तुम अक्षय मुक्ति-सुख और इस संसार के सुख की इच्छा रखते हो जो दुर्बलेन्द्रिय और निर्बुद्धि पुरूषों के धारण करने योग्य नहीं है, उस गृहस्थाश्रम को नित्य प्रयत्न से धारण करो। सुख-प्राप्ति में स्त्री की महत्ता इस प्रकार बताई है-

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रुषा रतिरुत्तमा।

दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च।। (मनु.9-28)

सन्तानोत्पति धर्म-कार्य उत्तम सेवा और रति तथा अपना और पितरों का जितना सुख है, वह सब स्त्री ही के आधीन होता है। भोजन के सम्बन्ध में निर्देश देते हुए मनुजी कहते हैं-

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।
(मनु०2-32)

अधिक भोजन करना स्वास्थ्यनाशक, आयुनाशक, सुख-नाशक, अहितकर और लोगों द्वारा निन्दित माना गया है। इसलिए उस अधिक भोजन करने को छोड़ देवे। अतिथि सेवा से मिलने वाले सुख के सम्बन्ध में कहते हैं-

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम्।।
(मनु०3-106)

जिस पदार्थ को अतिथि को नहीं खिलावे, उसे गृहस्थी स्वयं भी न खावे, अभिप्राय यह है कि जैसा स्वयं भोजन करे, वैसा ही अतिथि को भी दे। अतिथि सत्कार करना सौभाग्य, यश, आयु और सुख को देने और बढ़ाने वाला है। श्रेष्ठ आजीविका के व्रत से मिलने वाले सुख के बारे में कहा है-

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः
स्वर्गायुष्यशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत्।। (मनु.4-13)

स्नातक गृहस्थी द्विज निर्धारित वृत्तियों में से अपेक्षाकृत किसी श्रेष्ठ आजीविका से जीवननिर्वाह करते हुए सुख, आयु और यश देने वाले व्रतों को धारण करे। श्रेष्ठ स्वभाव बनाने से भी सुख प्राप्त होता है-

दृढ़कारी मृदुर्दान्तः कूराचारैरसंवसन्।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां ज्येत्स्वर्गं तथाव्रतः।।

सदा दृढ़कारी कोमल स्वभाव जितेन्द्रिय हिंसक, क्रूर, दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक् रहने हारा धर्मात्मा मन को जीत और विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे।

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम्।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम्।।
(मनु०6-84)

यही अज्ञानियों का शरण अर्थात् गौण संन्यासियों और यही विद्वान् संन्यासियों का यही सुख की खोज करनेहारे, और यही अनन्त सुख की इच्छा करने हारे मनुष्यों का आश्रय है।

योगदर्शन के सूत्र-**संतोषादनुत्तमः सुखलाभः**।। (2-42) का भाष्य करते हुए महर्षि व्यासजी कहते हैं- 'सन्तोष' नामक नियम की सिद्धि के विषय में और भी कहा है- संसार में जो भी कामना की पूर्ति का सुख है और जो भी स्वर्गीय महान् सुख है, ये दोनों सुख तृष्णा के नाश से प्राप्त होने वाले सुख की सोलहवीं कला (अंश) के भी समान नहीं हो सकते। बाल्मीकि रामायण (अ०का० 109-31) में कहा गया है कि सत्य, धर्म, पराक्रम, प्राणियों पर दया, प्रिय वचन बोलना, अतिथियों व विद्वानों की सेवा करना- ये स्वर्ग प्राप्ति के साधन हैं। आचार्य चाणक्य के अनुसार-

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी।
विभवे यस्य सन्तोपस्तस्य स्वर्गमिहैव।। (2-3)

जिसका पुत्र वश में हो, भार्या आज्ञा का पालन करती हो तथा ऐश्वर्य में जिसे सन्तोप हो, उसका स्वर्ग यहा ही है। पारलौकिक सुख मोक्ष के सम्बन्ध में किसी ने बहुत ही उत्तम कहा है-

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा, स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।।

समाधि के द्वारा जिसने अपने अविद्यादि मलों को नष्ट कर दिया है और जिसने अपने चित्त को आत्मा में स्थिर कर लिया है, ऐसे व्यक्ति को जो सुख होता है, उसका वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता, उसका तो स्वयं ही अन्तःकरण द्वारा अनुभव होता है।

❑❑

वैदिक देवताओं के नाम से बहुदेवतावाद

(भावेश मेरजा, भरुच, गुजरात, मो.- 09879528247)

'परोपकारी' पाक्षिक के अक्टूबर (प्रथम) 2015 के अंक में जयपुर निवासी श्री देवर्षि कलानाथ शास्त्री का 'वैदिक देवता पृथ्वी : मूर्तिपूजा की परिणति' लेख प्रकाशित हुआ है। पत्रिका के सम्पादक महोदय ने लेखक को भाषा शास्त्री, संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के अधिकारी विद्वान् एवं इतिहास तथा संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान् लिखा है।

लेख के आरम्भ में लेखक ने लिखा है- "यह एक सुविदित तथ्य है कि भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से पूर्व जिन वेदकालीन देवताओं की आराधना देश में की जाती थी, वे यथापि आज भी प्रत्येक धार्मिक कृत्य के अवसर पर पूजे जाते हैं। जैसे- इन्द्र, वरुण, प्रजापति, अग्नि, सूर्य आदि, किन्तु भक्ति आन्दोलन ने जिन कृष्ण, राधा, राम, सीता आदि को जन-जन के हृदय में आसीन कर दिया, वे वेदकाल के देवता नहीं थे। अन्य कुछ ऐसे देवताओं की आराधना अत्यन्त लोकप्रिय हो गई जो वेदकाल में ज्ञात नहीं थे, जैसे हनुमान, भैरव आदि।"

लेखक ने इन्द्र, वरुण, प्रजापति, अग्नि, सूर्य आदि को 'वेदकालीन देवता' कहा है। यह तो सत्य है कि वेदों में ये नाम के 'देवता' (अर्थात् प्रतिपाद्य विषय) मान्य हैं, परन्तु वेदों के शब्द यौगिक (प्रतिपादिक वा धातुज) व योगरूढ़ि होने से (एवं रूढ़ि न होने से) वेदभाष्यकारों द्वारा प्रकरणानुसार इन देवताओं के विभिन्न अर्थ किए जाते हैं। वेदों में इन्द्र, वरुण, प्रजापति, अग्नि, सूर्य आदि देवता वाचक नामों को विभिन्न अर्थों में, चेतन एवं जड़ पदार्थों के रूप में ग्रहण किए जाते हैं। महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ऐसे कई नामों के व्युत्पत्ति पूर्वक- धात्वर्थ के आधार पर परमात्मा परक अर्थ प्रकाशित किए हैं। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने अपने ग्रन्थों में यह सिद्धान्त भी प्रमाण पुरस्सर प्रतिपादित किया है कि वेदों में ये और ऐसे अन्य कई नाम एक ही सत्ता के, एक ही देवता के, एक ही ईश्वर के विभिन्न गुण-कर्म-स्वभाव के द्योतक हैं। इस प्रकार से वेदों में एक ही ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना पाई जाती है।

विवेच्य लेख में लेखक ने 'आराधना' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका प्रचलित अर्थ पूजा, उपासना, सेवा, नमन आदि लिया जा सकता है। परन्तु आज हमारे समाज में इन इन्द्र, वरुणादि देवताओं को प्रायः विभिन्न देवों के रूप में- किसी गुण, ऐश्वर्य आदि के अधिष्ठात्रा देवों या अधिष्ठात्री देवियों के रूप में ही ग्रहण किया जाता है। फिर इसी पौराणिक - अवैदिक मान्यता के आधार पर उनकी विभिन्न कल्पित मूर्तियों को माध्यम बनाकर उनकी पूजा-अर्चना व आराधना की जाती है। इस प्रकार के व्यवहार में वस्तुतः वैदिक एकेश्वरवाद का तो स्पष्टतः निरादर ही होता है।

लेखक ने अपने लेख में कृष्ण, राधा, राम, सीता, हनुमान, भैरव आदि देवताओं की आराधना को वेदकाल-बाह्य बताया है। उनका यह मत निःसन्देह स्तुत्य है।

लेखक ने अपने लेख में लक्ष्मी को वेदकालीन देवता माना है। उन्होंने लक्ष्मी को विष्णु की अर्धांगिनी और नारायण की पत्नी बताते हुए आगे लिखा है कि - वेदकालीन ऋषि लक्ष्मी को धन की देवी मात्र नहीं मानता था, विष्णु विश्व के प्रतिपालक हैं। वे त्रिविक्रम हैं, विश्वरूप हैं। वेद उन्हें सूर्यमण्डल में देखकर प्रणत

होता है। वे आकाश का रंग धारण किए हुए हैं, गगन-सदृश हैं, मेघवर्ण हैं, इत्यादि। परन्तु प्रतीत होता है कि लेखक अपनी बात को यहा ठीक ढंग से स्पष्ट नहीं कर पाए हैं।

वैदिक भाषा में 'विष्णु' और 'नारायण' दोनों परमात्मा के भी नाम हैं, मगर जिस परमात्मा के ये नाम हैं, वह परमात्मा अकायम्, निराकार व चेतन सत्ता है। अतः उस परमात्मा कि जो देहधारी मनुष्य नहीं है, उसकी अर्धांगिनी या पत्नी होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। वेदोक्त ईश्वर आकाशवत् अनन्त व्यापक तो है, परन्तु उसका कोई वर्ण नहीं है। उसकी सर्वज्ञता को, ज्ञान-स्वरूप को, शुद्ध स्वरूप को प्रकट करने के लिए ही वेद में उसे 'आदित्यवर्णम्' कहा गया है। स्वभावतः तो वह अरूप-अवर्ण ही है। रूप या वर्ण प्राकृतिक पदार्थ का गुण है, चेतन का नहीं। अतः किसी मेघवर्ण प्राकृतिक पदार्थ को ईश्वर मानकर पूजना अविद्या या मिथ्या ज्ञान ही है। सर्वव्यापक ईश्वर का एक नाम 'विष्णु' भी है, क्योंकि वह चर और अचररूप जगत् में व्यापक है- **'वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः'**। यही विष्णु विश्व का परम प्रतिपालक है। मगर उससे पृथक् कोई अन्य देहधारी विष्णु विश्व का परम प्रतिपालक कभी नहीं हो सकता- सर्वव्यापक, सर्वज्ञ न होने से। हा, यह भिन्न बात है कि वेदों में परमात्मा से भिन्न पदार्थों के लिए भी ये विष्णु, नारायणादि शब्दों धात्वर्थ के आधार पर प्रयोग अवश्य हुआ है।

आगे चलकर लेखक ने लक्ष्मी को पृथ्वी का पर्याय मानकर उसको सूर्य की सेविका बताया है और अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त का नाम लेकर पृथ्वी के गुणों का वर्णन किया है। साथ में लेखक ने गंगा नदी का भी स्तवन किया है। लेखक का मत है - "आज हम पृथ्वी की पूजा जिस रूप में कर रहे हैं, उसे सगुण भक्ति और मूर्तिपूजा की परम्परा ही से समझा जा सकता है।" लेखक ने आगे लिखा है- "हम देवनदी गंगा के ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकते, उसे देवी मानते हैं, पर मूर्ति पूजा की परम्परा में हमारे हृदय तब तक सन्तुष्ट नहीं होते, जब तक कि हम उस जीती-जागती, बहती-खिलखिलाती नदी की मूर्ति मगर पर बैठी कलश लिए मानवाकृति के रूप में बनाकर उसकी आरती नहीं उतारते।" इस प्रकार लेखक ने इस लेख में वैदिक देवताओं के नाम का आश्रय लेकर मूर्तिपूजा और 'सगुण भक्ति' (साकारवाद) का औचित्य बताने की चेष्टा की है। जैसा कि उन्होंने आगे लिखा है- "यही हुआ है पृथ्वी के साथ। हम उसकी पूजा तो आज भी करते हैं, पर मूर्ति बनाकर। लक्ष्मी यही पृथ्वी है, मूर्ति के रूप में।" फिर लिखा है- "वेद का ऋषि इसी सूर्य और भूदेवी के जोड़े का आराधक था। मूर्तिपूजा की परिकल्पना में वह हो गया लक्ष्मी और नारायण का जोड़ा।" लेखक ने ऐसा विधान कर वैदिक ऋषियों को भी सूर्य और पृथ्वी जैसे जड़ कार्य-पदार्थों (सम्भूति) के आराधक घोषित कर दिया! महर्षि दयानन्द का चिन्तन भिन्न है। उन्होंने लिखा है- "देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं, जैसी कि पृथ्वी। परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो! इसी मन्त्र ('यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः' - ऋग्वेद 1.164.39) में कि जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य है। यह उनकी भूल है, जो 'देवता' शब्द से (सदैव) ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से 'महादेव' इसीलिए कहाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति, स्थित, प्रलयकर्त्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता है।" (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास) ऐसा ही उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के 'वेदविषयविचार' प्रकरण में लिखा है- "इन (चालीस देव) में से कोई भी उपासना के योग्य नहीं है, किन्तु व्यवहारमात्र की सिद्धि के लिए ये सब देव हैं, और सब मनुष्यों के उपासना के योग्य तो देव एक ब्रह्म

ही है।... जो कोई इससे भिन्न को इष्ट देव मानता है, उसको अन्नर्य अर्थात् अनाड़ी कहना चाहिए।"

लेखक ने अपने लेख में आगे लिखा है- "बहुतों को शायद इस तथ्य को मानने में असुविधा हो कि लक्ष्मी अथवा श्री पूरी तरह हमारी माता पृथ्वी का मानवीकृत रूप है। उनके लिए केवल यह निवेदन ही पर्याप्त है कि वे वेद के उस सूक्त को देख लें, जिसका नाम श्रीसूक्त है, जिसे लक्ष्मी की आराधना का सर्वाधिक प्रभावी साधन माना जाता है और जिसके मन्त्र बोल-बोल कर पुरोहित लोग धन की कामना वाले यजमानों से खीर की सोलह आहुतियाँ दिलवाते हैं। इसके अर्थ की ओर सम्भवतः हम अधिक ध्यान नहीं दे पाते, किन्तु यदि इसका अर्थ समझना चाहें तो पृथ्वी की स्तुति माने बिना इसका अर्थ ही नहीं लगेगा।"

वस्तुतः श्रीसूक्त को वेदों के मौलिक - प्रामाणिक अंश के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है। उसे वेद-तुल्य प्रमाण नहीं माना जा सकता। श्रीसूक्त की गणना ऋग्वेद के खिल या परिशिष्ट के रूप में, प्रक्षेप अंश के रूप में ही होती है। अतः इसके आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। हां, यह तो सच है कि वर्तमान में पौराणिक मान्यतानुसार इसी श्रीसूक्त के माध्यम से लोगों द्वारा ऐश्वर्य, सम्पन्नता, समृद्धि आदि की कामना से स्त्री स्वरूप पौराणिक काल्पनिक लक्ष्मी देवी का अर्चन-स्तवन किया जाता है। परन्तु वैदिक उपासना काण्ड, एकेश्वरवाद व ईश्वरवाद से इस सूक्त का कोई लेना-देना नहीं है।

वैसे परमात्मा का नाम 'लक्ष्मी' भी है और 'श्री' भी है। जैसा कि महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है-

"**(श्रिञ् सेवायाम्)**- इस धातु से 'श्री' शब्द सिद्ध होता है। **''यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः''**।- जिसका सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते हैं, उस परमात्मा का नाम 'श्री' है। (लक्ष दर्शनाङ्कनयोः)- इस धातु से 'लक्ष्मी' शब्द सिद्ध होता है। - **'यो लक्षयति पश्यत्यङ्कते चिह्नयति चराऽचरं जगत्, अथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः।'**- जो सब चराचर जगत् को देखता, चिह्नित अर्थात् द्रश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिह्न बनाता तथा सबको देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'लक्ष्मी' है।" (सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास)

अतः ईश्वर द्वारा रचित सूर्य, पृथ्वी आदि किसी भी उपकारक प्राकृतिक कार्य-पदार्थ को कि जिसे वैदिक देवता कहा जाता है, उसकी यथार्थ स्तुति (गुण-कथन) न कर, उसके बारे में स्वेच्छाचार पूर्वक पौराणिक कल्पनाओं का घटाटोप खड़ा कर, उसे मानवाकार में चित्रित या मूर्त्तिमान कर, उस अचेतन मूर्ति या प्रतीक की पूजा-आराधना करना सनातन वैदिक ज्ञान का संवर्धन नहीं है, बल्कि एक प्रकार से उसका प्रदूषण या उससे खिलवाड़ ही है। विशुद्ध वैदिक ज्ञान-विज्ञान को तिरोहित कर, बहुदेवतावाद, अवतारवाद एवं मतमतान्तरों की सृष्टि करने में देवताओं के मानवीकरण की यही अविद्याजन्य प्रवृत्ति कारणभूत रही है। अतः सत्य सनातन वैदिक ईश्वरवाद के यथेष्ट विकृतिकरण को 'युगानुरूप परिवर्तन' का लुभावना नाम देकर किए जाने वाले किसी भी प्रयास को स्तुत्य कैसे माना जा सकता है? आर्य समाज के वैदिक दृष्टिकोण से तो नितान्त नहीं। किसी व्यक्ति के 'हृदय की सन्तुष्टि' के लिए वैदिक तत्त्वज्ञान की बलि तो नहीं दी जा सकती। आर्य समाज को सत्य धर्म प्रवर्त्तन कर सत्यार्थ प्रकाश करना ही होगा। उसी में अखिल मानवता का कल्याण निहित है।

❑❑

भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें

(डॉ० विवेक आर्य, मो.-09310679090)

काला पहाड़

बांग्लादेश। यह नाम स्मरण होते ही भारत के पूर्व में एक बड़े भूखंड का नाम स्मरण हो उठता है, जो कभी हमारे देश का ही भाग था। जहाँ कभी बंकिम के ओजस्वी आनंद मठ, कभी टैगोर की हृदयस्पर्शी कवितायें, कभी अरविन्द का दर्शन, कभी वीर सुभाष की क्रांति ज्वलित होती थी। आज बंगाल प्रदेश एक मुस्लिम राष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ हिन्दुओं की दशा दूसरे दर्जे के नागरिकों के समान है। क्या बंगाल के हालात पूर्व से ऐसे थे? बिल्कुल नहीं। अखंड भारतवर्ष की इस धरती पर पहले हिन्दू सभ्यता विराजमान थी। कुछ ऐतिहासिक भूलों ने इस प्रदेश को हमसे सदा के लिए दूर कर दिया। एक ऐसी ही भूल का नाम काला पहाड़ है। बंगाल के इतिहास में काला पहाड़ का नाम एक अत्याचारी के नाम से स्मरण किया जाता है। काला पहाड़ का असली नाम कालाचंद राय था। कालाचंद राय एक बंगाली ब्राह्मण युवक था। पूर्वी बंगाल के उस वक्त के मुस्लिम शासक की बेटी को उससे प्यार हो गया। बादशाह की बेटी ने उससे शादी की इच्छा जाहिर की। वह उससे इस कदर प्यार करती थी कि वह इस्लाम छोड़कर हिंदू विधि से उससे शादी करने के लिए तैयार हो गई। कथित ब्राह्मणों को जब पता चला कि कालाचंद राय एक मुस्लिम राजकुमारी से शादी कर उसे हिंदू बनाना चाहता है, तो ब्राह्मण समाज ने कालाचंद का विरोध किया। उन्होंने उस मुस्लिम युवती के हिंदू धर्म में आने का न केवल विरोध किया, बल्कि कालाचंद राय को भी जाति बहिष्कार की धमकी दी। कालाचंद राय को अपमानित किया गया । अपने अपमान से क्षुब्ध होकर कालाचंद गुस्से से आग-बबूला हो गया और वह इस्लाम स्वीकारते हुए उस युवती से निकाह कर उसके पिता के सिंहासन का उत्तराधिकारी हो गया। अपने अपमान का बदला लेते हुए राजा बनने से पूर्व ही उसने तलवार के बल पर ब्राह्मणों को मुसलमान बनाना शुरू किया। उसका एक ही नारा था मुसलमान बनो या मरो। पूरे पूर्वी बंगाल में उसने इतना कत्लेआम मचाया कि लोग तलवार के डर से मुसलमान होते चले गए। इतिहास में इसका जिक्र है कि पूरी पूर्वी बंगाल को इस अकेले व्यक्ति ने तलवार के बल पर इस्लाम में धर्मांतरित कर दिया। यह केवल उन मूर्ख, जातिवादी, अहंकारी व हठधर्मी ब्राह्मणों को सबक सिखाने के उद्देश्य से किया गया था। उसकी निर्दयता के कारण इतिहास उसे काला पहाड़ के नाम से जानता है। अगर अपनी संकीर्ण सोच से ऊपर उठकर कुछ हठधर्मी ब्राह्मणों ने कालाचंद राय का अपमान न किया होता, तो आज बंगाल का इतिहास कुछ और ही होता।

कश्मीर का इस्लामीकरण

कश्मीरः शैव संस्कृति के ध्वजावाहक एवं प्राचीन काल के ऋषि कश्यप की धरती कश्मीर आज मुस्लिम बहुल विवादित प्रान्त के रूप में जाना जात है। 1947 के बाद से धरती पर जन्नत सी शांति के लिए प्रसिद्ध यह प्रान्त आज तक कभी शांत नहीं रहा। इसका मुख्य कारण पिछले 700 वर्षों में घटित कुछ घटनाएँ हैं, जिनका परिण्वाम कश्मीर का इस्लामीकरण होना है। कश्मीर में सबसे पहले इस्लाम स्वीकार करने वाला राजा रिंचन था। 1301 ई० में कश्मीर के राजसिंहासन पर सहदेव नामक शासक विराजमान हुआ। कश्मीर में बाहरी तत्वों ने जिस प्रकार अस्त व्यस्तता फैला रखी थी, उसे सहदेव रोकने में पूर्णतः असफल रहा। इसी समय कश्मीर में लद्दाख का राजकुमार रिंचन आया, वह अपने पैत्रक राज्य से विद्रोही होकर यहाँ आया था। यह संयोग की बात थी कि इसी समय यहाँ एक मुस्लिम सरदार शाहमीर स्वात (तुर्किस्तान) से आया था। कश्मीर के राजा सहदेव ने बिना विचार किये और बिना उनकी सत्यनिष्ठा की परीक्षा लिए इन दोनों विदेशियों को प्रशासन

में महत्वपूर्ण दायित्व सौंप दिये। यह सहदेव की अदूरदर्शिता थी, जिसके परिणाम आगे चलकर उसी के लिए घातक सिद्ध हुए। तातार सेनापति डुलचू ने 70000 शक्तिशाली सैनिकों सहित कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। अपने राज्य को क्रूर आक्रामक की दया पर छोड़कर सहदेव किश्वताड़ की ओर भाग गया। डुलचू ने हत्याकांड का आदेश दे दिया। हजारों लोग मार डाले गये। कितनी भयानक परिस्थितियों में राजा ने जनता को छोड़ दिया था, यह इस उद्धरण से स्पष्ट हो गया। राजा की अकर्मण्यता और प्रमाद के कारण हजारों लाखों की संख्या में हिंदू लोगों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ गया। जनता की स्थिति दयनीय थी। राजतरंगिणी में उल्लेख है- 'जब डुलचू वहाँ से चला गया, तो गिरफ्तारी से बचे कश्मीरी लोग अपने गुप्त स्थानों से इस प्रकार बाहर निकले, जैसे चूहे अपने बिलों से बाहर आते हैं। जब राक्षस डुलचू द्वारा फैलाई गयी हिंसा रुकी तो पुत्र को पिता न मिला और पिता को पुत्र से वंचित होना पड़ा, भाई भाई से न मिल पाया। कश्मीर सृष्टि से पहले वाला क्षेत्र बन गया। एक ऐसा विस्तृत क्षेत्र जहाँ घास ही घास थी और खाद्य सामग्री न थी।

इस अराजकता का सहदेव के मंत्री रामचंद्र ने लाभ उठाया और शासक बन बैठा। परंतु रिंचन भी इस अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूका। जिस स्वामी ने उसे शरण दी थी, उसके राज्य को हड़पने का दानव उसके हृदय में भी उभर आया और भारी उत्पात मचाने लगा। रिंचन जब अपने घर से ही बागी होकर आया था, तो उससे दूसरे के घर शांत बैठे रहने की अपेक्षा भला कैसे की जा सकती थी? उसके मस्तिष्क में विद्रोह का परंपरागत कीटाणु उभर आया, उसने रामचंद्र के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। रामचंद्र ने जब देखा कि रिंचन के हृदय में पाप हिलोरें मार रहा है और उसके कारण अब उसके स्वयं के जीवन को भी संकट है, तो वह राजधानी छोड़कर लोहर के दुर्ग में जा छिपा। रिंजन को पता था कि शत्रु को जीवित छोड़ना कितना घातक सिद्ध हो सकता है? इसलिए उसने बड़ी सावधानी से काम किया और अपने कुछ सैनिकों को गुप्त वेश में रामचंद्र को ढूँढने के लिए भेजा। जब रामचंद्र मिल गया तो, उसने रामचंद्र से कहलवाया कि रिंचन समझौता चाहता है। वार्तालाप आरंभ हुआ तो छल करते हुए रिंचन ने रामचंद्र की हत्या करा दी। इस प्रकार कश्मीर पर रिंचन का अधिकार हो गया। यह घटना 1320 की है। उसने रामचंद्र की पुत्री कोटा रानी से विवाह कर लिया था। इस प्रकार वह कश्मीर का राजा बनकर अपना राज्य कार्य चलाने लगा। कहते हैं कि अपने पिता के हत्यारे से विवाह करने के पीछे कोटा रानी का मुख्य उद्देश्य उसके विचार परिवर्तन कर कश्मीर की रक्षा करना था। धीरे धीरे रिंचन उदास रहने लगा। उसे लगा कि उसने जो किया, वह ठीक नहीं था। उसने कश्मीर के शैवों के सबसे बड़े धर्मगुरु देवास्वामी के समक्ष हिन्दू बनने का आग्रह किया। देवास्वामी ने इतिहास की सबसे भयंकर भूल की और बुद्ध मत से सम्बंधित रिंचन को हिन्दू समाज का अंग बनाने से मना कर दिया। रिंचन के लिए पंडितों ने जो परिस्थितियाँ उत्पन्न की थीं वे बहुत ही अपमानजनक थीं, जिससे उसे असीम वेदना और संताप ने घेर लिया। देवास्वामी की अदूरदर्शिता ने मुस्लिम मंत्री शमशरी को मौका दे दिगा। उसने रिंचन को सलाह दी कि अगले दिन प्रातः आपको जो भी धर्मगुरु मिले, आप उसका मत स्वीकार कर लेना। अगले दिन रिंचन जैसे ही सैर को निकला, उसे मुस्लिम सूफी बुलबुल शाह अजान देते मिला। रिंचन को अंततः अपनी दुविधा का समाधान मिल गया। उससे इस्लाम में दीक्षित होने का आग्रह करने लगा। बुलबुलशाह ने गर्म लोहा देखकर तुरंत चोट मारी और एक घायल पक्षी को सहला कर अपने यहाँ आश्रय दे दिया। रिंचन ने भी बुलबुलशाह का हृदय से स्वागत किया। इस घटना के पश्चात् कश्मीर का इस्लामीकरण आरम्भ हुआ जो लगातार 500 वर्षों तक हत्या, धर्मान्तरण आदि के रूप में सामने आया।

यह अपच का रोग यहीं नहीं रुका। कालांतर में महाराज गुलाब सिंह के पुत्र महाराज रणबीर सिंह गद्दी पर बैठे। रणबीर सिंह द्वारा धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना कर हिन्दू संस्कृति को प्रोत्साहन दिया गया। राजा के

विचारों से प्रभावित होकर राजौरी पुंछ के राजपूत मुसलमान और कश्मीर के कुछ मुसलमान राजा के समक्ष आवेदन करने आये कि उन्हें मूल हिन्दू धर्म में फिर से स्वीकार कर लिया जाये। राजा ने अपने पंडितों से उन्हें वापिस मिलाने के लिये पूछा, तो उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। एक पंडित तो राजा के विरोध में यह कहकर झेलम में कूद गया कि राजा ने अगर उसकी बात नहीं मानी तो वह आत्मदाह कर लेगा। राजा को ब्रह्महत्या का दोष लगेगा। राजा को मजबूरीवश अपने निर्णय को वापिस लेना पड़ा। जिन संकीर्ण सोच वाले पंडितों ने रिंचन को स्वीकार न करके कश्मीर को 500 वर्षों तक इस्लामिक शासकों के पैरों तले रुंदवाया था। उन्हीं ने बाकी बचे हिन्दू कश्मीरियों को रुंदवाने के लिए छोड़ दिया। इसका परिणाम आज तक कश्मीरी पंडित भुगत रहे हैं।

पाकिस्तान के जनक जिन्ना और इकबाल

पाकिस्तान। यह नाम सुनते ही 1947 के भयानक नरसंहार और भारत होना स्मरण हो उठता है। महाराज राम के पुत्र लव द्वारा बसाई गई लाहौर से लेकर सिख गुरुओं की कर्मभूमि आज पाकिस्तान के नाम से एक अलग मुस्लिम राष्ट्र के रूप में जानी जाती है। जो कभी हमारे अखंड भारत देश का भाग थी। पाकिस्तान के जनक जिन्ना का नाम कौन नहीं जानता। जिन्ना को अलग पाकिस्तान बनाने का पाठ पढ़ाने वाला अगर कोई था तो वो था सर मुहम्मद इकबाल। मुहम्मद इकबाल के दादा कश्मीरी हिन्दू थे। उनका नाम था तेज बहादुर सप्रु। उस समय कश्मीर पर अफगान गवर्नर अजीम खान का राज था। तेज बहादुर सप्रु खान के यहाँ पर राजस्व विभाग में कार्य करते थे। उन पर घोटाले का आरोप लगा। उसके समक्ष दो विकल्प रखे गए। पहला था मृत्युदंड का विकल्प दूसरा था इस्लाम स्वीकार करने का विकल्प। उन्होंने धर्म परिवर्तन कर इस्लाम ग्रहण कर लिया। और अपना नाम बदल कर स्यालकोट आकर रहने लगे। इसी निर्वासित परिवार में मुहम्मद इकबाल का जन्म हुआ था। कालांतर में यही इकबाल पाकिस्तान के जनक जिन्ना का मार्गदर्शक बना।

मुहम्मद अली जिन्ना गुजरात के खोजा राजपूत परिवार में हुआ था। कहते हैं उनके पूर्वजों को इस्लामिक शासन काल में पीर सदरुद्दीन ने इस्लाम में दीक्षित किया था। इस्लाम स्वीकार करने पर भी खोजा मुसलमानों का चोटी, जनेऊ आदि से प्रेम दूर नहीं हुआ था। इस्लामिक शासन गुजर जाने पर खोजा मुसलमानों की भारतीय संस्कृति को स्वीकार करने की उनकी वर्षों पुरानी इच्छा फिर से जाग उठी। उन्होंने उस काल में भारत की आध्यात्मिक राजधानी बनारस के पंडितों से शुद्ध होने की आज्ञा माँगी। हिन्दुओं का पुराना अपच रोग फिर से जाग उठा। उन्होंने खोजा मुसलमानों की माँग को अस्वीकार कर दिया। इस निर्णय से हताश होकर जिन्ना के पूर्वजों ने बचे हुए हिन्दू अवशेषों को सदा के लिए तिलांजलि दे दी एवं उनका मन सदा के लिए हिन्दुओं के प्रति द्वेष और घृणा से भर गया। इसी विषाक्त माहौल में उनके परिवार में जिन्ना का जन्म हुआ, जो स्वाभाविक रूप से ऐसे माहौल की पैदाइश होने के कारण आज पाकिस्तान का जनक बना। अगर हिन्दू पंडितों ने शुद्ध कर अपने से अलग हुए भाइयों को मिला लिया होता, तो आज देश की क्या तस्वीर होती। पाठक स्वयं अंदाजा लगा सकते हैं।

अगर सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में ऐसी-ऐसी अनेक भूलों को जाना जायेगा, तो मन व्यथित होकर खून के आँसू रोने लगेगा। संसार के मार्गदर्शक, प्राचीन ऋषियों की यह महान भारत भूमि आज किन हालातों में है, यह किसी से छुपा नहीं है। क्या हिन्दुओं का अपच रोग इन हालातों का उत्तरदायी नहीं है? आज भी जात-पात, क्षेत्र-भाषा, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, छोटा-बड़ा आदि के आधार पर विभाजित हिन्दू समाज क्या अपने बिछुड़े भाइयों को वापिस मिलाने की पाचक क्षमता रखता है? यह एक भीष्म प्रश्न है क्यूंकि देश की सम्पूर्ण समस्याओं का हल इसी अपच रोग के निवारण में है।

एक मुहावरा –

'बोये पेड़ बबूल के आम की चाहत क्यों?'

भारत-भूमि पर सटीक रूप से लागू होता है।

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश— इस मन्त्र में देवता और राक्षस का स्वरूप क्या है? यह स्पष्ट किया है। देवता वह है, जिसके मन, वचन और कर्म में एकता है और जो मन, वचन और कर्म में भिन्न होते हैं वे राक्षस होते हैं। संसार का समस्त सुख देवता ही भोगते हैं, राक्षस कदापि नहीं ॥

दीर्घतमाः ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अथात्महन्तारो जनाः कीदृशा इत्याह॥

अब आत्मा के हननकर्त्ता अर्थात् आत्मा के विरुद्ध आचरण करने वाले जन कैसे होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

ओ३म्— असुर्य्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ (यजु० ४०। ३)

पदार्थः—(असुर्य्याः) असुराणां = प्राणपोषणतत्पराणाम् अविद्यादि युक्तानाम् इमे सम्बन्धिनस्तत्सदृशः पापकर्माणः (नाम) प्रसिद्धौ (ते) (लोकाः) लोकन्ते = पश्यन्ति ते जनाः (अन्धेन) अन्धकाररूपेण (तमसा) अत्यावरकेण (आवृताः) समन्तात् युक्ताः = आच्छादिताः (तान्) दुःखान्धकारावृतान् भोगान् (ते) (प्रेत्य) मरणं प्राप्य (अपि) जीवन्तोऽपि (गच्छन्ति) प्राप्नुवन्ति (ये) (के) (च) (आत्महनः) य आत्मानं घ्नन्ति=तद् विरुद्धमाचरन्ति ते (जनाः) मनुष्याः॥

सपदार्थान्वयः—ये (लोकाः) लोकन्ते=पश्यन्ति ते जनाः (अन्धेन) अन्धकाररूपेण (तमसा) अत्यावरकेण (आवृताः) समन्तात् युक्ता = आच्छादिताः (ये, के, च) (आत्महनः) य आत्मानं घ्नन्ति = तद् विरुद्धमाचरन्ति ते (जनाः) मनुष्याः (सन्ति) (ते) (असुर्य्याः) असुराणाम् = प्राणपोषणतत्पराणाम् अविद्यादि युक्तानाम् इमे सम्बन्धिनस्तत्सदृशः पापकर्माणः (नाम) प्रसिद्धाः (ते) (प्रेत्य) मरणं प्राप्य (अपि) जीवन्तोऽपि (तान्) दुःखान्धकारावृतान् भोगान् (गच्छन्ति) प्राप्नुनन्ति ॥

भाषार्थ—जो (लोकाः) लोग (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) अज्ञान के आवरण से (आवृताः) सब ओर से ढके हुए (ये, के, च) और जो कोई (आत्महनः) आत्मा के विरुद्ध आचरण करने हारे (जनाः) मनुष्य हैं (ते) ते (असुर्य्याः) अपने प्राणपोषण में तत्पर, अविद्या आदि दोषों से युक्त लोगों एवं उनके सम्बन्धियों के सदृश पापकर्म करने वाले (नाम) प्रसिद्ध हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरने के पीछे (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुःख अज्ञान रूप अन्धकार से युक्त भोगों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।।

भावार्थः—त एव असुराः दैत्याः राक्षसाः पिशाचाः दुष्टा- मनुष्याः ये आत्मन्यन्यद् वाच्यन्यत् कर्मण्यन्यदाचरन्ति। ते न कदाचिद् अविद्या, दुःखसागराद् उत्तीर्य आनन्दं प्राप्तुं शक्नुवन्ति। ये च यदात्मना तन्मनसा यन्मन्सा तद्वाचा, यद्वाचा तत्कर्मणाऽनुतिष्ठन्ति, त एव देवा, आर्याः सौभाग्यवन्तोऽखिलजगत्पवित्रयन्त इहाऽमुत्राऽतुलं सुख-मश्नुवते॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य, असुर, दैत्य, राक्षस, पिशाच एवं दुष्ट हैं जो आत्मा में और वाणी में और तथा कर्म कुछ और ही करते हैं। वे कभी अविद्या रूप दुःखसागर से पार होकर आनन्द को नहीं प्राप्त कर सकते और जो लोग जो आत्मा में सो मन में, जो मन में, सो वाणी में, जो वाणी में सो कर्म में आचरण करते हैं, वे ही देव, आर्य, सौभाग्यवान् जन सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक तथा परलोक में अनुपम सुख को प्राप्त करते हैं॥

आर./आर. नं० १६३३०/६७ Post in Delhi R.M.S ०५-११/११/२०१५ भार- ४० ग्राम	नवम्बर 2015	रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17 लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७ Licenced to post without prepayment Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.................................

ग्राम.................................

डा0 ....

जिला.................................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।